सुवर्ण भारती ग्रन्थमाला - १

वन्दे लोकगुरुम्

दक्षिणाम्नाय श्रृंगेरी श्रीशारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य श्री श्री भारतीतीर्थजी महाराज के दिव्य सत्तरहवें (७०) वर्ष के सम्पूर्ति महोत्सव के सन्दर्भ में तत्करकमलसंजात जगद्गुरु शंकराचार्य श्री श्री विधुशेखर भारतीजी महाराज द्वारा गुरुमहिमा का वर्णन एवं गुरुवर्य-दशश्लोकी

WWW.SRINGERI.NET

अनुवादक - विद्वान तुलसी कुमार जोशी, वाराणसी

श्री श्री जगद्गुरु शंकराचार्य महासंस्थान
दक्षिणाम्नाय श्री शारदा पीठ, श्रृंगेरी

Vande Lokagurum (Hindi) - *Anugraha Sandesha delivered in Sanskrit by Jagadguru Sri Sri Sri Vidhushekhara Bharati Mahaswamiji on the occasion of the Divya Saptati Poorti Mahotsava (71st Vardhanti) of Dakshinamnaya Sringeri Sharada Peethadhishwara Jagadguru Shankaracharya Sri Sri Sri Bharati Tirtha Mahaswamiji*

Printed at	:	*Vidya Bharati Press* *Shankarapuram, Bangalore 560004* *(an in–house publication wing of Dakshinamnaya Sri Sharada Peetham, Sringeri 577139)*
First Edition	:	*2025 (5000 copies)*
Contribution Value	:	*₹ 40/-*
Designed by	:	*Sri Shankara Advaita Research Centre, Dakshinamnaya Sri Sharada Peetham, Sringeri*

This book is distributed at a highly subsidised value for the sustenance and propagation of Sanatana Dharma, and to reach all sections of the society. The contribution value received for this book is used for charitable purposes.

Copies Available at	:	*Dakshinamnaya Sri Sharada Peetham, Sringeri*
Email	:	*adminoffice@sringeri.net*

WWW.SRINGERI.NET

विषय सूची

१ सद्गुरु के लक्षण १
२ मातृतः पितृतः शुद्धः ७
३ शुद्धभावः..१२
४ जितेन्द्रियः १५
५ सर्वागमानां सारज्ञः १९
६ सर्वशास्त्रार्थतत्त्ववित् २३
७ परोपकारनिरतः ३७
८ जपपूजादितत्परः ४१
९ अमोघवचनः..४३
१० शान्तः ४५
११ वेदवेदाङ्गपारगः ४७

WWW.SRINGERI.NET

१२ योगमार्गानुसन्धायी ५२

१३ देवता-हृदयङ्गमः..५४

१४ गुरुवर्यदशश्लोकी..५८

WWW.SRINGERI.NET

सद्गुरु के लक्षण

शास्त्राब्धिपारदृश्वानं सङ्गहीनं तपोनिधिम् ।
भजे श्रीभारतीतीर्थगुरुं भद्रौघदायकम् ॥

लगभग बारह सौ वर्ष पूर्व भगवान् शिव के अवतार भगवत्पूज्यपादाचार्य जगद्गुरु श्रीमद् आदिशंकराचार्यजी भारत के केरल में पूर्णा नदी के तट पर विद्यमान कालडी नामक ग्राम में आर्याम्बा एवं शिवगुरु नामक पवित्र विप्र दंपती के पुत्र के रूप में अवतरित हुए। अपने आठ वर्ष की अल्प आयु में ही उन्होंने सभी वेदों का एवं बारह वर्ष की आयु में समस्त शास्त्रों का अध्ययन कर लिया था। उन्होंने अपनी माता आर्याम्बा की आज्ञा पाकर कालडी से निकलकर नर्मदा नदी के तट पर तपस्या में निरत जगद्गुरु श्रीमद् गोविन्द भगवत्पादजी को अपने गुरु के रूप में आश्रयण प्राप्त किया।

उसके पश्चात् जगद्गुरु श्रीमद् गोविन्द भगवत्पादजी की आज्ञा से प्रस्थानत्रय के नाम से प्रसिद्ध भगवद्गीता, दशोपनिषत् एवं ब्रह्मसूत्रों पर समस्त सुधीजनों के द्वारा वन्दित दोषरहित भाष्यों की रचना बदरीनाथ क्षेत्र में करके अद्वैत में ही समस्त श्रुति, स्मृति, पुराण एवं इतिहास का परम तात्पर्य है, ऐसा सिद्धांत प्रतिपादित किया। उन्होंने उपदेशसाहस्री, विवेकचूडामणि इत्यादि अनेक प्रकरण ग्रन्थों की भी रचना की। गणेशपञ्चरत्न, सौन्दर्यलहरी एवं शिवानन्दलहरी इत्यादि अनेक रमणीय स्तोत्र ग्रन्थों का भी प्रणयन किया।

WWW.SRINGERI.NET

तत्पश्चात् भगवत्पाद जगद्गुरु श्रीमद् आदिशंकराचार्यजी ने तीन बार समग्र भारत देश में संचरण करते हुए वाद कथा के माध्यम से वेदविरुद्ध मत को मानने वाले लोगों पर विजय प्राप्त की। उन्होंने सनातन वैदिकधर्म एवं उपनिषदों के अद्वैत सिद्धांत का सर्वत्र प्रचार किया। तत्पश्चात् काश्मीर क्षेत्र में सर्वज्ञ पीठ पर आसीन हुए। उन्होंने सनातन वैदिकधर्म का सभी दिशाओं में प्रचार करने के उद्देश्य से भारत की पूर्व, दक्षिण, पश्चिम एवं

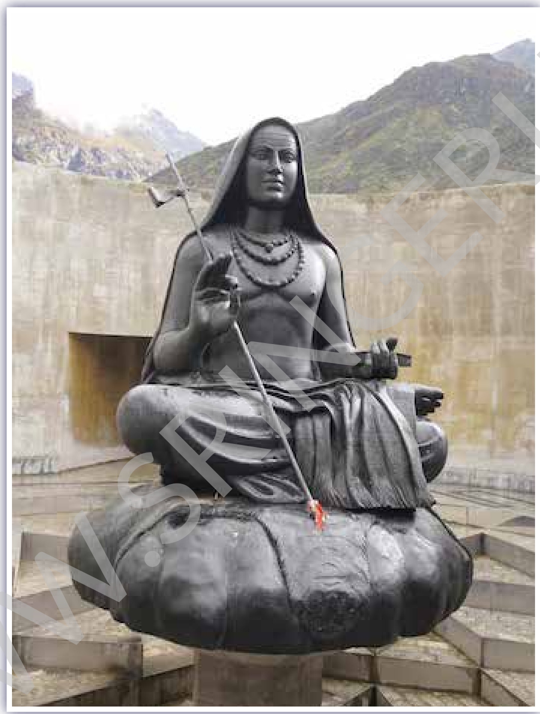

उत्तर चारों दिशाओं में विद्यमान पुरी, शृंगेरी, द्वारका एवं बदरीक्षेत्र में क्रमशः गोवर्धनपीठ, शारदापीठ, कालिकापीठ एवं ज्योतिष्पीठ के नाम से चार आम्नायपीठों की स्थापना की। अन्होंने अपने प्रमुख शिष्य क्रमशः हस्तामलकाचार्य, सुरेश्वराचार्य, पद्मपादाचार्य एवं तोटकाचार्य को उन आम्नायपीठों के अधिपति के रूप में नियुक्त किया। तत्पश्चात् वे अपने बत्तीसवर्ष (३२) की आयु में सभी शिष्यों पर अनुग्रह करके केदारक्षेत्र

WWW.SRINGERI.NET

जाकर अपने स्वधाम कैलास की ओर प्रस्थान किये।

जगद्गुरु श्रीमच्छंकरभगवत्पूज्यपादाचार्यजी ने दक्षिण दिशा में विद्यमान श्रृंगेरी क्षेत्र में दक्षिणाम्नाय शारदापीठ की स्थापना करके अपने शिष्यों के बीच ज्ञान, वैदुष्य एवं आयु की दृष्टि से ज्येष्ठ वेदान्तदर्शन के वार्तिककार जगद्गुरु श्रीसुरेश्वराचार्यजी को उस पीठ के प्रथम अधिपति के रूप में नियुक्त किया। जगद्गुरु श्री विद्यातीर्थ, श्री सच्चिदानन्दभारती, श्री नृसिंहभारती, श्री सच्चिदानन्दशिवाभिनवनृसिंहभारती, श्री चन्द्रशेखरभारती एवं श्री अभिनव विद्यातीर्थ महास्वामी जैसे विशिष्ट महिमा से युक्त श्रेष्ठ जगद्गुरुओं के द्वारा अलंकृत यह शारदापीठ आज भी अखण्डित जगद्गुरुपरम्परा से विभूषित है। इस पीठ में अधिष्ठित, अतिशयमहिमा से युक्त, सकलशास्त्र में निष्णात, तपोनिधि, और श्रौत एवं स्मार्त सदाचार के परिपालन में निरत सभी जगद्गुरु प्रतिदिन भगवान् चन्द्रमौलीश्वर एवं भगवती श्रीशारदापरमेश्वरी की विधिवद् उपासना करते हुए उनसे सभी आस्तिक लोगों के योग एवं क्षेम की प्रार्थना करते हुए समुपस्थित जिज्ञासुओं को उनकी योग्यता के अनुरूप धर्मतत्त्व एवं ब्रह्मतत्त्व का प्रबोधन करते हुए सभी लोगों से पूजित महापुरुषों के रूप में विद्यमान रहें हैं।

भगवत्पाद श्रीशंकराचार्यजी विवेकचूडामणि में कहते हैं –

> दुर्लभं त्रयमेवैतत् दैवानुग्रहहेतुकम् ।
> **मनुष्यत्वं मुमुक्षुत्वं महापुरुषसंश्रयः ॥**

इस जगत् में **मनुष्यत्वं** – मनुष्यजन्म, **मुमुक्षुत्वं** – मोक्ष की तीव्र इच्छा, **महापुरुषसंश्रयः** – दैव अंश से युक्त एवं समस्त मानव कुल के उपकार के लिए अवतरित महात्माओं का अनुग्रह - यह तीन चीज अत्यंत दुर्लभ है। अनेक जन्म में किए गए पुण्य के परिपाक के बिना इन्हें प्राप्त नहीं किया जा सकता है, ऐसा इस श्लोक का भाव है। इन तीनों में भी मनुष्य जन्म

एवं अनेक जन्मों में किए गए पुण्य के कारण मोक्ष की तीव्र इच्छा होने पर भी मोक्षमार्ग का उपदेश करने वाले सद्गुरु की प्राप्ति अत्यंत दुर्लभ है। मोक्ष की प्राप्ति के लिए ब्रह्मज्ञान को प्राप्त करना होता है। ब्रह्म ज्ञान के लिए ब्रह्म-विचार की आवश्यकता होती है। उस विचार्यमाण ब्रह्म के अत्यंत दुर्बोध होने के कारण सद्गुरु के बिना विचार करना असंभव जैसा ही है। इसीलिए श्रुति भी कहती है –

परीक्ष्य लोकान्कर्मचितान्ब्राह्मणो
निर्वेदमायान्नास्त्यकृतः कृतेन ।
तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छे-
त्समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् ॥

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत ।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति ॥ इति,

गीता में भी कहा गया है –

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥

इन सभी स्थलों में गुरु के आश्रय लेकर ही ब्रह्म-विचार की कर्तव्यता का विधान है। ऐसा ही ब्रह्म-विचार फल प्रदान करने वाला होता है। किन्तु महापुरुषों का अनुग्रह अनेक जन्म में किए गए पुण्यपुंज से कुछ ही लोगों को प्राप्त होता है। इसलिए भगवत्पादजी ने महापुरुषसंश्रय को अत्यंत दुर्लभ कहा है। महापुरुष कौन है ? गुरु कौन है ? इस विषय में शास्त्र में लिखा है कि –

WWW.SRINGERI.NET

मातृतः पितृतः शुद्धः शुद्धभावो जितेन्द्रियः ।
सर्वागमानां सारज्ञः सर्वशास्त्रार्थतत्त्ववित् ॥
परोपकारनिरतो जपपूजादितत्परः ।
अमोघवचनश्शान्तो वेदवेदाङ्गपारगः ॥
योगमार्गानुसन्धायी देवताहृदयङ्गमः ।
इत्यादिगुणसंपन्नो गुरुरागमसम्मतः ॥ इति ।

ऐसे लक्षणों से युक्त ही सद्गुरु कहलाते हैं। ब्रह्म-विचार के लिए ऐसे ही सद्गुरु का हमें आश्रयण करना चाहिए। किन्तु इस कलियुग में इन लक्षणों से युक्त सद्गुरु की प्राप्ति हमें कहाँ हो सकती है? ऐसा प्रश्न उपस्थित होने पर हम दृढ निश्चय के साथ यह कह सकते हैं कि पूर्वोक्त सभी लक्षणों से युक्त हमारे गुरुचरण दक्षिणाम्नाय श्रृंगेरी शारदापीठ के छत्तीसवें (३६) अधिपति जगद्गुरु शंकराचार्य श्री श्री भारतीतीर्थ महास्वामीजी का आश्रयण हम प्राप्त कर सकते हैं।

हमारे गुरुजी जगद्गुरु शंकराचार्य श्रीश्रीभारतीतीर्थमहास्वामीजी सभी शास्त्रों में निष्णात दक्षिणाम्नाय श्रृंगेरी शारदापीठ के छत्तीसवें अधिपति के रूप में सनातन वैदिकधर्म और श्रौत एवं स्मार्त सदाचार का परिपालन करते हुए सभी शिष्यों पर अनुग्रह करते हुए जिज्ञासुओं को उनकी योग्यता के अनुसार धर्म एवं ब्रह्म तत्त्व का बोध कराते हुए भगवती श्रीशारदापरमेश्वरी एवं भगवान् श्रीचन्द्रमौलीश्वर की उपासना करते हुए उनसे सकल आस्तिक जनों के श्रेयस् की प्रार्थना करते हुए समस्त जगत् में पूजनीय हैं।

WWW.SRINGERI.NET

WWW.SRINGERI.NET

मातृतः पितृतः शुद्धः

(सत्कुल में जन्मा)

'मातृतः पितृतः शुद्धः' का अर्थ है 'सत्कुल में जन्मा'। यह सद्गुरु का पहला लक्षण है। आंध्र प्रदेश के मचिलीपट्नम् नामक नगर में सन् १९५१ में एक श्रेष्ठ ब्राह्मण तङ्गिराल वेङ्कटेश्वरावधानी नाम से प्रसिद्ध थे। सदाचार से संपन्न उन्होंने बाल्यकाल में ही सम्पूर्ण कृष्णयजुर्वेद का अध्ययन कर लिया था। उसके बाद उन्होंने गृहस्थाश्रम में रहकर आश्रमोचित धर्म का पालन किया और भगवान की कृपा से प्राप्त वस्तु से ही अत्यंत संतुष्ट और सत्त्वगुण संपन्न रहे। इनके सद्गुणों के कारण सभी लोग उनका आदर करते थे। उनकी धर्मपत्नी, महासाध्वी अनन्तलक्ष्म्यंबा, उनकी जीवनसंगिनी थीं। इस पवित्र दंपती की चार पुत्रियाँ थी।

श्रीमान् अवधानीजी ने मचिलीपट्नम् नगर में आने से पूर्व 'अलुगुमल्लेपाडु' नामक स्थान पर निवास करते हुए पुत्र प्राप्ति की इच्छा से वहाँ पर विद्यमान भगवान् भवानीशङ्कर का एक वर्ष तक प्रतिदिन बड़ी श्रद्धा के साथ महान्यास पूर्वक रुद्राभिषेक से पूजन किया था। जिससे भगवान शिवजी ने अत्यंत प्रसन्न होकर उन पर कृपाशीर्वाद बरसाया। ईश्वर के प्रसाद के फलस्वरूप श्रीमती अनन्तलक्ष्म्यंबा ने गर्भ धारण किया।

जब माता गर्भावस्था में थी तभी उन्होंने गर्भ में विद्यमान शिशु के विषय में अनेक दैवी संपत् से युक्त होने के लक्षणों का अनुभव किया था। एक

WWW.SRINGERI.NET

बार उन्होंने एक स्वप्न देखा। उस स्वप्न में भगवान आंजनेय (हनुमानजी) उनके सामने प्रकट हुए और वे माताजी को तीन आम्रफल देकर "तुम्हारा पुत्र सर्वश्रेष्ठ गुणों से युक्त और सम्पूर्ण संसार द्वारा पूज्य होगा" ऐसा कहते हुए अन्तर्धान हो गये। इसके बाद खर नामक संवत्सर में चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की षष्ठी तिथि को अनन्तलक्ष्म्यंबा ने सभी सद्गुणों से युक्त सभी को आनन्द प्रदान करने वाले पुत्र को जन्म दिया। वह बालक अपनी नेत्र के अवलोकन मात्र से ही सभी के हृदय को आह्लादित कर देता था। उस बालक का नाम 'सीतारामांजनेय' रखा गया।

सीतारामांजनेय बाल्यकाल में ही किसी भी क्षण को व्यर्थ न करते हुए हमेशा भगवान के स्मरण और अच्छे कार्यों द्वारा सब लोगों के आदर का पात्र बने। अत्यल्प आयु में ही संस्कृत भाषा में बिना किसी दोष के भाषण करने वाले बालक ने सभी संस्कृत प्रेमियों और विद्वानों को मंत्रमुग्ध कर दिया था। उपनयन संस्कार के उपरान्त प्रतिदिन भगवती गायत्री की आराधना करते हुए वे वेदों का अध्ययन करते थें और माता-पिता की सेवा करते थे।

WWW.SRINGERI.NET

षोडश वर्ष (१६) की आयु में ब्रह्मचारी सीतारामांजनेय शर्मा ने वेद का अध्ययन समाप्त कर लिया और शास्त्रों के अध्ययन में गंभीर रुचि को धारण करते हुए भगवान महाकालेश्वर के क्षेत्र उज्जयिनी में चातुर्मास्य व्रत के अनुष्ठान में निरत दक्षिणाम्नाय शृंगेरी शारदा पीठ के पैंतीसवें (३५वें) अधिपति सकलशास्त्र में पारंगत जगद्गुरु शंकराचार्य श्री अभिनव विद्यातीर्थ महास्वामीजी के शरण को प्राप्त करके उनकी सन्निधि में अपनी शास्त्र अध्ययन की इच्छा को प्रकट किया।

जगद्गुरु शंकराचार्य श्री श्री अभिनव विद्यातीर्थ महास्वामीजी ने अपने समीप में आए उस ब्रह्मचारी को श्रद्धा, विनय, सौम्यता, कुशाग्र बुद्धि जैसे सद्गुणों के पुंज से परिपूर्ण देखते हुए अत्यंत प्रसन्न चित्तता से शास्त्र के अध्ययन के लिए तत्काल ही सारी व्यवस्थाओं का सम्पादन किया। कुछ ग्रंथों का अध्यापन स्वयं जगद्गुरुजी ने उस ब्रह्मचारी को कराया। कुछ ग्रन्थों को सिखाने लिए सकल शास्त्र में अत्यंत निष्णात विद्वानों से पूजित गोल्लपूडि गोपालकृष्ण शास्त्रीजी नामक महापण्डित को नियुक्त किया गया। अत्यंत स्वल्पकाल में ही ब्रह्मचारी सीतारामांजनेय शर्मा ने शास्त्रों में विद्वत्ता के प्रकर्ष को प्राप्त कर लिया।

WWW.SRINGERI.NET

तत्पश्चात् जगद्गुरु शंकराचार्य श्री श्री अभिनव विद्यातीर्थ महास्वामीजी ने उस ब्रह्मचारी में धर्म के विषय में अत्यंत श्रद्धा, वैदुष्य और दक्षता को देखकर उसपर भगवती श्री शारदांबा परमेश्वरी की अनुज्ञा से अपनी कृपावृष्टि बरसायी कि संपूर्ण संसार को आनन्दित करने वाले आनन्द नामक संवत्सर में आश्विन कृष्ण द्वादशी के दिन संन्यास आश्रम की दीक्षा एवं प्रणव-महावाक्योपदेश तथा साथ ही "भारतीतीर्थ" नामक योगपट्ट को प्रदान किया।

तभी से जगद्गुरु श्रीश्रीभारतीतीर्थमहास्वामीजी दक्षिणाम्नाय शृंगेरी शारदापीठ के छत्तीसवें (३६वें) अधिपति के रूप में वेदों एवं शास्त्रों के संप्रदायों का संरक्षण करते हुए, सर्वत्र सनातन वैदिक धर्म का प्रचार करते हुए, प्रतिदिन भगवती शारदापरमेश्वरी और भगवान चंद्रमौलीश्वर की पूजा करते हुए, समुद्र तट से हिमालय तक संचरण कर जिज्ञासुओं को धर्मतत्त्व एवं ब्रह्मतत्त्व का यथायोग्य ज्ञान प्रदान करते हुए, अनेक असाधारण अलौकिक अकृतपूर्व कार्य को संपन्न करते हुए, सम्पूर्ण जगत् में पूज्यरूप में विराजमान हैं। उनकी कृपा से अनेक लोगों का कल्याण होता है, इसमें कोई संदेह नहीं है।

सन् २०१३ में आंध्र प्रदेश के मचिलीपट्नम् नामक नगर में, जहाँ हमारे श्रीगुरुचरण का जन्म हुआ था, वहाँ शृंगेरी शाखा मठ बनाने का निर्णय लेकर सभी शिष्यों ने मिलकर निर्माण कार्य प्रारंभ किया। इस मठ के निर्माण के लिए अनेक कर्मचारियों को नियोजित किया गया था। जब वें निर्माण कार्य कर रहें थें तब उनमें से एक कर्मकर ने भूमि खोदते हुए फावड़े को ऊपर उठाकर अपने सामने की भूमि पर पटका। उस समय फावड़े के सिरे के भूमि में टकराने पर एक अनोखी ध्वनि उत्पन्न हुई। तत्काल ही वहाँ पर विद्यमान सभी लोगों ने उस अनोखी ध्वनि को सुनकर उसका कारण जानने के उद्देश्य से वहाँ जाकर देखा। उस भूमि में मिट्टियों के अन्दर सभी के मन में आश्चर्य उत्पन्न कराने वाली भगवान् हनुमानजी के बालरूप में

WWW.SRINGERI.NET

विद्यमान शिला की एक अत्यंत सुन्दर मूर्ति प्राप्त हुई। जिस स्थान पर उस महासाध्वी अनन्तलक्ष्म्यंबा ने स्वप्न में भगवान् आंजनेय (हनुमानजी) का साक्षात्कार किया था, जहाँ पर माताजी ने सकल सद्गुणों से युक्त दैवी संपत् से विभूषित पुत्र रत्न को प्रसूत किया था, उसी स्थल में भगवान् आंजनेय के बालस्वरूप मूर्ति की प्राप्ति से सभी लोग आश्चर्यचकित हो गए। तत्पश्चात् उस शाखामठ में एक मंदिर का निर्माण करवा कर विलम्ब नामक संवत्सर (सन् २०१८) के चैत्र कृष्ण द्वितीया तिथि को हमारे श्रीगुरुचरण की आज्ञा से भगवान् आंजनेय की उसी मूर्ति की प्रतिष्ठा करके हमने कुंभाभिषेक किया। वहाँ पर विद्यमान भगवान् आंजनेय सभी लोगों का आशीर्वाद करते हैं। इस प्रकार गुरु के लक्षणों में जिसको प्रथम लक्षण कहा गया है **"मातृतः पितृतः शुद्धः"** यह गुण हमारे श्रीगुरुचरण में अत्यंत स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

WWW.SRINGERI.NET

शुद्धभावः

गुरु के द्वितीय लक्षण के रूप में '**शुद्धभावः**' को कहा गया है। शुद्ध भाव का अर्थ है शुद्ध स्वभाव अर्थात् शुद्ध अन्तःकरण। शुद्धभाव वह है जिसमें मन, वाणी एवं शरीर हमेशा दूसरों के हित का चिन्तन, उपदेश एवं आचरण करते हैं। जो इससे विपरीत अर्थात् मन से दूसरों के प्रति द्रोह का चिन्तन, वाणी एवं शरीर द्वारा दूसरों के हित करने का अभिनय करता है वह शुद्धभाव वाला नहीं, अपितु ठग होता है।

गुरुजी सदैव सभी लोगों के हित के लिये भगवती शारदाम्बा एवं भगवान् चन्द्रमौलीश्वर की पूजा करते हैं। हमारे संन्यास लेने के पश्चात् किसी एक दिन गुरुजी ने आदेश दिया था "आज आपको चन्द्रमौलीश्वर की पूजा करनी है।" उस समय हमने उनसे पूछा "पूजा के काल में क्या सङ्कल्प करना है?" उस समय श्रीगुरुचरण ने कहा "'सर्वेषां जनानां योगक्षेमार्थम्' अर्थात् 'सभी लोगों के कल्याण के लिये' यही हमारा सङ्कल्प है। इसके अतिरिक्त हमें किसी भी वस्तु की अपेक्षा नहीं है। लोगों के कल्याण के लिए ही हम प्रतिदिन भगवती शारदाम्बा एवं भगवान् चन्द्रमौलीश्वर की पूजा करते हैं। न केवल इस स्थान पर अपितु विजय यात्रा के काल में हम जिन जिन क्षेत्रों में भगवान् की पूजा करते हैं वहाँ सभी जगहों पर सभी लोगों के योग एवं क्षेम की ही प्रार्थना करते हुए भगवान् की पूजा करते हैं। अतः यही सङ्कल्प करना चाहिए।"

WWW.SRINGERI.NET

इसी प्रकार एक बार उन्होंने मुझे आज्ञा दी थी कि “मंत्रशास्त्र में भगवान् के एक यंत्र का प्रतिपादन है। उस यंत्र की पूजा करने से महान श्रेय की प्राप्ति होती है। अतः उस यंत्र को लिख कर मठ में स्थापना करके उसकी पूजा करनी चाहिए। इसके लिए सर्वप्रथम, शास्त्र के अनुसार उस यंत्र का लेखन कीजिए। यंत्र में बहुत सारे पद्म एवं उनके दल हैं। उन दलों में कुछ मंत्र लिखने हैं। उनमें भी प्रथम दल में उन उन मंत्रों का प्रथम अक्षर, द्वितीय दल में द्वितीय अक्षर इस प्रकार शास्त्र में एक विशेष क्रम का उपदेश है। उस उपदेश के अनुसार ही यंत्र को बनाइए।”

प्रथमतः हमारे द्वारा यंत्र के कुछ भागों का निर्माण करके गुरुचरण के समक्ष प्रस्तुत किया गया। उसे देख कर गुरुजी ने कहा “इस यंत्र को आपने मंत्रों के सभी अक्षरों को अंतर्मुख करके बनाया है। शास्त्र में यंत्रों के अक्षर के लेखन के विषय में ऐसा उपदेश किया गया है – यदि अक्षरों का अंतर्मुख लेखन करके यंत्र का पूजन किया जाए तब पूजक जिस शत्रु के पराजय की इच्छा करता है उस शत्रु का पराजय हो जाता है। अक्षरों के बहिर्मुख लेखन करके पूजन करने पर पूजक जिस पर भगवान् के अनुग्रह की इच्छा करता है उस पर भगवान् का अनुग्रह होता है। इस यंत्र में आपने अंतर्मुख करके

अक्षरों को लिखा है। इससे तो दूसरों का पराजय होगा। किन्तु हमारे लिये शत्रु कोई है ही नहीं जिसका पराभव करना हो। सभी अनुग्रह के योग्य ही है। इसलिए सभी लोगों के कल्याण के लिए इस यंत्र का पूजन करना चाहिए, इस प्रकार चिन्तन करते हुए इस यंत्र का लेखन करना चाहिए। अतः इस यंत्र में सभी अक्षरों को बहिर्मुख करके ही लिखना चाहिए। तभी हमें जो सभी लोगों का कल्याण इष्ट है वह संपन्न होगा।" इसके बाद हमने इस यंत्र का वैसा ही निर्माण किया जैसा गुरुजी का उपदेश था। यंत्र के निर्माण के बाद उस यंत्र की मठ में प्रतिष्ठा भी हुई।

इस प्रकार गुरु का जो '**शुद्धभावत्वं**' – अर्थात् 'सदा दूसरों का हित करना' यह द्वितीय लक्षण कहा गया है, वह हमारे गुरुजी में स्पष्ट रूप में परिलक्षित होता है।

WWW.SRINGERI.NET

जितेन्द्रियः

गुरु के तृतीय लक्षण के रूप में '**जितेन्द्रियः**' होना कहा गया है। जिसने सभी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त किया हो उसे जितेन्द्रिय कहते हैं। इन्द्रियों पर विजय प्राप्त किए बिना हम कुछ भी नहीं साध सकते हैं, ब्रह्म-विचार तो बहुत दूर की बात है। ब्रह्म-विचार के बिना हमें ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती है और ज्ञान के बिना मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती है। इस प्रकार मोक्ष की प्राप्ति के लिए ज्ञान की आवश्यकता एवं ज्ञान की प्राप्ति के लिए ब्रह्म-विचार अवश्य कर्तव्य है।

ब्रह्म-विचार में साधन चतुष्टय संपन्न का ही अधिकार है। उन साधन चतुष्टयों में जो तीसरा शमादिषट्क रूप साधन है उस साधन में इन्द्रिय निग्रह का उल्लेख है। निगृहीत इन्द्रिय वाले पुरुष के द्वारा ही ब्रह्म-विचार सम्भव है। जिस पुरुष ने इन्द्रिय का निग्रह नहीं किया है वह पुरुष स्वयं भी ब्रह्म को नहीं जान सकता है एवं दूसरों को भी ब्रह्म का बोध नहीं करा सकता है जिससे वह स्वयं भी संसार सागर को पार करने में असमर्थ होते हुए दूसरों को भी पार कराने में असमर्थ होता है। इसीलिए गुरु के लक्षणों में जितेन्द्रियत्व भी एक लक्षण कहा गया है। कठोपनिषद् में इस प्रकार श्रुत है –

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु ।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च ॥

WWW.SRINGERI.NET

इन्द्रियाणि हयानाहुः विषयांस्तेषु गोचरान् ।
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः ॥
यस्त्वविज्ञानवान् भवत्ययुक्तेन मनसा सदा ।
तस्येन्द्रियाण्यवश्यानि दुष्टाश्वा इव सारथेः ॥
यस्तु विज्ञानवान्भवति युक्तेन मनसा सदा ।
तस्येन्द्रियाणि वश्यानि सदश्वा इव सारथेः ॥ इत्यादि ।

इसके बाद अन्त में ऐसा कहा गया है –

विज्ञानसारथिर्यस्तु मनःप्रग्रहवान्नरः ।
सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ इति

इन वाक्यों का यह अभिप्राय है – लोक में किसी अभीष्ट स्थल में जाने का इच्छुक कोई रथी रथ पर चढ कर बैठता है। उस रथ का कुशल सारथि रस्सी के माध्यम से घोडों को मजबूती से बांध कर उन अश्वों को नियंत्रित करते हुए उस रथ पर बैठे हुए रथी को इष्ट स्थल की प्राप्ति कराता है। यदि वह सारथि अश्वों के नियंत्रण में निपुण हो तो ही रथी को अभीष्टस्थल की प्राप्ति करा सकता है। यदि वह कुशल सारथी नहीं हो तो घोडों के नियंत्रण में अशक्त होता हुआ घोडें जिस ओर रथ को ले जातें हैं उस प्रदेश में रथी को पहुँचाता है।

WWW.SRINGERI.NET

यहाँ पर जीव ही रथी है, हमारा शरीर रथ के स्थान पर है, बुद्धि ही सारथी है, मन रस्सी है एवं इन्द्रियाँ घोडे हैं। इस प्रकार रथी एवं रथ के रूपकों की कल्पना के माध्यम से यह श्रुति एक विशिष्ट अर्थ का प्रतिपादन करती है। जीव इस शरीर पर आरूढ होकर शास्त्र एवं आचार्यों के उपदेश के द्वारा बुद्धि का संस्कार करके, संस्कृत बुद्धि के द्वारा मन का निग्रह करके, निगृहीत मन के द्वारा इन्द्रियों पर नियंत्रण करके ब्रह्म-विचार के द्वारा इष्ट देश अर्थात् 'विष्णु' - 'व्यापक परमात्मा' के परम पद को प्राप्त होता है। विष्णु के परम पद की प्राप्ति का तात्पर्य विष्णु से अभेद की प्राप्ति से है। यदि जीव निगृहीत इन्द्रिय वाला होता है तो वह इष्ट देश प्राप्त (विष्णु के परम पद) करता है। यदि जीव इन्द्रियों को वश में नहीं रखता है तो वह अनिष्ट देश अर्थात् जन्म एवं मरण के संसार चक्र को पुनः पुनः प्राप्त होता है।

WWW.SRINGERI.NET

यस्त्वविज्ञानवान्भवत्ययुक्तेन मनसा सदा ।
तस्येन्द्रियाण्यवश्यानि दुष्टाश्वा इव सारथेः ॥

यस्तु विज्ञानवान्भवति युक्तेन मनसा सदा ।
तस्येन्द्रियाणि वश्यानि सदश्वा इव सारथेः ॥

विज्ञानसारथिर्यस्तु मनःप्रग्रहवान्नरः ।
सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ इति ।

इसीलिए मन के विषय में पूर्वाचार्यों ने इस प्रकार कहा है –

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः ।
बन्धाय विषयासक्तं मुक्त्यै निर्विषयं स्मृतम् ॥ इति ।

विषयों में आसक्त मन ही जीव के संसार का कारण होता है। वही मन स्ववश में किया हुआ परमात्मा में स्थापित होने पर मोक्ष का कारण होता है। अतः गुरु का जितेन्द्रिय होना आवश्यक है। जो जितेन्द्रिय होता है वह स्वयं संसार सागर को पार करता है एवं दूसरों को भी पार करा सकता है। गुरुचरण सदा अपने श्रम को ध्यान में रखे बिना धर्म के उद्धार के कार्यों में रत रहते हैं। इस प्रकार इस तृतीय जितेन्द्रियत्व रूप लक्षण को हमारे गुरुचरणों में प्रत्यक्ष देखा जा सकता है।

WWW.SRINGERI.NET

सर्वागमानां सारज्ञः

(सभी आगमों का सार जानने वाले)

गुरु का एक लक्षण '**सर्वागमानां सारज्ञः**' होता है। जो पुराण, इतिहास एवं धर्मशास्त्रों का तात्पर्य अच्छी तरह से जानता है वही सभी आगमों का सार जानने वाला होता है। श्रीगुरुचरण का पुराण इतिहास एवं धर्मशास्त्रों में असाधारण वैदुष्य है। उन ग्रन्थों में कुछ विषय सामान्य दृष्टि से विरोधी दिखते हैं। वे विषय अत्यंत गंभीर हैं एवं कोमल मति वालों के समझ से परे हैं। ऐसे बहुत सारे विषयों को परिष्कृत करके गुरुचरण उपदेश देते हैं। जैसे कि श्रीमद्भगवद्गीता के तृतीय अध्याय में भगवान् श्रीकृष्ण ने ऐसा कहा है –

> देवान् भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः ।
> परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥ इति ।

भगवत्पादजी ने भाष्य में इस श्लोक का यह अर्थ कहा है – "हे लोगों! आप सभी यज्ञ आदि क्रिया के द्वारा इन्द्रादिदेवताओं को तुष्ट करें। एवं वे देवता यज्ञ आदि कर्म से तुष्ट होकर आप लोगों को वर्षा आहार एवं अन्य अभीष्ट वस्तु प्रदान करके पुष्ट करें। इस प्रकार एक दूसरे को तुष्ट करते हुए क्रम से मोक्ष अथवा स्वर्गादि रूप श्रेय को आप लोग प्राप्त होवें।"

किन्तु श्रीमद्भागवत महापुराण में एक सन्दर्भ आता है - जब नन्द गोप को इन्द्र की पूजा करने की इच्छा हुई तब भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं – "हमारे

WWW.SRINGERI.NET

एवं हमारे गौवों के लिये जो कुछ भी अपेक्षित होता है वह सब कुछ यह गोवर्धन पर्वत ही प्रदान करता है। अतः हम सब इसी की पूजा करेंगे। इन्द्र की पूजा क्यों करनी है?"। इस प्रकार भगवान् इन्द्र की पूजा से नन्द गोप को रोकते हैं। इन्द्र की पूजा से नन्द गोप को रोककर बाद में भगवान् स्वयं गीता में कहते हैं कि – "देवान् भावयताऽनेन ते देवा भावयन्तु वः।"

यहाँ पर एक विरोध प्रतीत होता है। इस विरोध का परिहार किस प्रकार करना चाहिए इसके विषय में गुरुजी कहते हैं – भगवान् ने यज्ञ आदि कर्म के द्वारा जो देवताओं को तुष्ट करने की बात कही है वह ठीक ही है। यहाँ पर कोई विरोध नहीं है। तो फिर भगवान् ने इन्द्र की पूजा से नन्दगोप का वारण क्यों किया? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि – इन्द्र को लोकपालक होने का अहंकार था, उस अहंकार के नाश के लिए भगवान् ने ऐसा कहा। इन्द्र ने अपने आप को ही सभी लोकों का पालक मानकर भगवान् का विस्मरण किया। जब नन्द गोप के द्वारा उसकी पूजा नहीं की गई तब क्रुद्ध होकर इन्द्र ने पत्थरों की वर्षा की। उस समय भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने कनिष्ठिका के अग्र भाग में गोवर्धन पर्वत रखकर सभी गोपालकों की एवं गौवों की रक्षा की। तत्पश्चात् इन्द्र ने अपने अपराध को जानकर अत्यंत लज्जित होकर भगवान् के चरण कमलों का आश्रयण कर क्षमा याचना की। तब भगवान् ने इन्द्र पर अनुग्रह किया। जिस परमात्मा के अनुग्रह से इन्द्र ने लोकपालकत्व प्राप्त किया था, उस परमात्मा को भूल कर इन्द्र स्वयं को ही सभी लोकों का पालक समझ रहा था तब इन्द्र के अहंकार को दूर करने की इच्छा से भगवान् ने इन्द्र की पूजा से नन्द गोप को रोका। इसलिए यहाँ पर किसी भी प्रकार के विरोध की आशंका नहीं करनी चाहिए। सभी को देवताओं का पूजन करना ही चाहिए। हमें यज्ञ आदि के द्वारा देवताओं को संतुष्ट करना चाहिए – इस प्रकार गुरुजी ने सामान्य दृष्टि से प्रतीत होने वाले विरोध का विशेष दृष्टि का अवलम्बन करके परिहार किया।

WWW.SRINGERI.NET

गुरुजी को जब जब समय मिलता है तब तब वे ग्रन्थों का अवलोकन करते हैं। उन ग्रन्थों में निहित गूढ विषयों का उपदेश शिष्यों को प्रदान करते हैं। श्रीमद्भागवत महापुराण मे साधुओं के उत्कर्ष का बोध कराने के लिए यह श्लोक प्राप्त होता है –

न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः ।
ते पुनन्त्युरुकालेन दर्शनादेव साधवः ॥ इति ।

इस श्लोक का सार इस प्रकार प्रतीत होता है – "जगत् में जल से परिपूर्ण तीर्थ प्रसिद्ध हैं। मिट्टी एवं शिला से निर्मित देवता सभी के द्वारा पूजे जाते हैं इसलिए मृद् और शिला के देव भी प्रसिद्ध हैं। किन्तु वास्तव में तीर्थ जलमय नहीं हैं, देवता मृद् एवं शिला के नहीं हैं, क्यों? क्योंकि वे विलम्ब से पूजकों को पवित्र करते हैं। जो साधु अर्थात् परोपकार में निरत लोग होते हैं वे तो दर्शन मात्र से लोगों को पवित्र कर देते हैं।"

किन्तु लोक में अम्मय अर्थात् जल से परिपूर्ण स्थान ही तीर्थ के रूप में प्रसिद्ध हैं। मिट्टी एवं शिला से निर्मित ही देवता के रूप में प्रसिद्ध हैं। अतः यहाँ विरोध की प्रतीति होती है।

WWW.SRINGERI.NET

इस पर गुरुजी समाधान देते हैं कि – इस श्लोक में दो 'नञ्' का प्रयोग हुआ है। श्लोक के पदों का अन्वय इस प्रकार है – **"अम्मयानि तीर्थानि न पुनन्तीति न, मृच्छिलामया देवा न पुनन्तीति न"** अर्थात् जलमय तीर्थ पवित्र नहीं करते हैं ऐसा नहीं है, मिट्टी एवं शिला से निर्मित देवता पवित्र नहीं करते हैं ऐसा भी नहीं है, ये अवश्य ही पवित्रता प्रदान करते हैं। किन्तु 'उरुकालेन' अर्थात् बहुत काल तक उनकी सेवा करने से ही ये पवित्रता प्रदान करते हैं। साधुजनों के तो दर्शनमात्र से पवित्रता प्राप्त हो जाती है। इस विषय को श्रीमद्भागवत के श्रीधरी व्याख्या में व्याख्याकार ने कहा है। इस विषय का उपदेश एक सन्दर्भ में गुरुजी ने प्रदान किया था। इस प्रकार सभी आगमों में उनका अत्यंत वैदुष्य है। अतः सभी आगमों का सार जानने वाले ऐसा जो सद्गुरु का लक्षण कहा गया है उसका हम गुरुजी में स्पष्ट अनुभव कर सकते हैं।

WWW.SRINGERI.NET

सर्वशास्त्रार्थतत्त्ववित्

(सभी शास्त्रों के तत्त्वज्ञानी)

सद्गुरु के लक्षणों में अगला है '**सर्वशास्त्रार्थतत्त्ववित्**' । श्रीगुरुचरण का न्याय, व्याकरण, वेदान्त, मीमांसा आदि शास्त्रों में जिस प्रकार का वैदुष्य है उसका सङ्क्षेप में वर्णन हमारे द्वारा नहीं किया जा सकता है। उनके अध्ययन की पद्धति ही अत्यंत आश्चर्य जनक थी। जब वे ब्रह्मचर्याश्रम में शास्त्र का अध्ययन करते थे तब उनके अध्यापक न्याय शास्त्र में अत्यंत पारंगत विद्वद्वन्द्य गोल्लपूडि गोपालकृष्ण शास्त्रीजी थे। वे प्रातःकाल में न्यायशास्त्र के वाद ग्रन्थों का अध्यापन कराते थे। जिन विषयों को प्रातः शास्त्रीजी पढ़ाया करते थे उन्हीं विषयों का मध्याह्न में उनके समक्ष गुरुजी चिन्तन करते थे। प्रातःकाल में शास्त्रीजी शास्त्र की पङ्क्तियों का जैसा आशय बताते थे गुरुजी ठीक उसी आशय को मध्याह्न काल में उनके समक्ष प्रतिपादित करते थे। शास्त्र के जटिल विषयों को भी एकबार श्रवणमात्र से ही ग्रहण करके गुरुजी अपने बुद्धि में धारण कर लेते थे। श्रीशंकरदिग्विजय में (श्रृंगेरी के सुप्रसिद्ध १२वें पीठाधीश्वर) श्रीमद् विद्यारण्य महास्वामीजी ने शंकरभगवत्पादाचार्यजी के अध्ययन का प्रकार कुछ श्लोकों के माध्यम से वर्णित किया है –

अजनि दुःखकरो न गुरोरसौ
श्रवणतः सकृदेव परिग्रही ।

WWW.SRINGERI.NET

सहनिपाठजनस्य गुरुः स्वयं
स च पपाठ ततो गुरुणा विना ॥ इति ।

इस श्लोक का अर्थ यह है कि – भगवत्पाद शंकराचार्यजी ने कभी भी गुरु को अध्ययनकाल में अथवा अन्य किसी सन्दर्भ में क्लेश नहीं उत्पन्न किया। एकबार ही जिस विषय का गुरुजी उपदेश देते थे उस विषय को उसी समय भगवत्पाद समझ जाते थे तथा कभी भी उस विषय को नहीं भूलते थे। यदि शिष्य ऐसा अध्ययन करे तो गुरु कभी भी दुःखी नहीं होता है। ऐसे शिष्य के अध्यापन में गुरुजन अत्यंत उत्साह से प्रवृत्त होते हैं। भगवत्पाद के अध्ययन की शैली इस प्रकार थी।

सहनिपाठजनस्य गुरुः स्वयम् – अध्ययन काल में भगवत्पाद शंकराचार्यजी का गुरु के समान ही सामर्थ्य था। इस कारण जो भी विद्यार्थी लोग उनके साथ अध्ययन करते थे उन सभी को स्वयं भगवत्पाद ही पढ़ाते थे। ग्रन्थों में सहपाठियों को जो सन्देह होता था उसका परिहार उन्हें भगवत्पाद से ही प्राप्त हो जाता था। उसीप्रकार हमारे गुरुचरण के अध्ययन काल में श्रृंगेरी में विद्यमान पाठशाला के बहुत सारे विद्यार्थी अनेक सन्देहों का समाधान गुरुचरण से प्राप्त करते थे।

स च पपाठ ततो गुरुणा विना – इसका अर्थ यह है कि कुछ ग्रन्थ ही गुरुजी ने पढ़ाया। अवशिष्ट ग्रन्थों को भगवत्पाद ने स्वयं ही अध्ययन कर लिया था। इसीप्रकार गुरुचरण के अध्ययन की भी शैली थी। शास्त्रीजी ने कुछ ही ग्रन्थों का अध्यापन किया था। अवशिष्ट क्रोडपत्रों का अध्ययन स्वयं गुरुजी ने ही कर लिया।

न्यायशास्त्र में चतुर्दशलक्षणी नामक ग्रंथ में दो प्रगल्भ लक्षण दिए गए हैं। उनमें से दूसरे लक्षण पर एक बार महागणपति वाक्यार्थसभा में

WWW.SRINGERI.NET

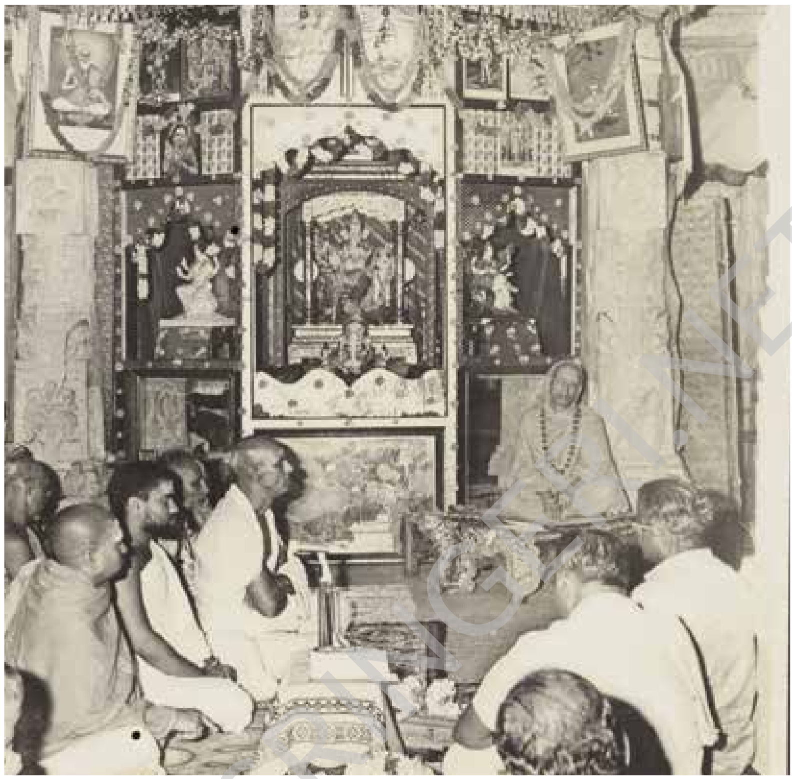

ब्रह्मचर्याश्रम में श्रीगुरुचरण ने विचार प्रस्तुत किया था। उस सभा में उनके द्वारा प्रतिपादित सभी विषय अत्यंत नवीन और गंभीर थे। विचारों के उपस्थापन के पश्चात् जगद्गुरु श्रीमद् अभिनव विद्यातीर्थ महास्वामीजी ने अत्यंत संतुष्ट होकर गुरुवर्य से पूछा कि "तुम्हारे द्वारा प्रतिपादित यह विषय कहाँ से उद्धृत है ? इसे किसने पढ़ाया ?" इस पर गुरुजी ने उत्तर दिया, "यह विषय द्वितीय प्रगल्भ लक्षण पर 'न चरत्नमालिका' नामक क्रोडपत्र में उपलब्ध है। इसे किसी ने भी नहीं पढ़ाया है, मैंने स्वयं इसे देखा और यहाँ प्रस्तुत किया है।" इससे अत्यधिक संतुष्ट होकर जगद्गुरु श्रीमद् अभिनव विद्यातीर्थ महास्वामीजी ने गुरुवर्य को अपने आशीर्वाद से अनुगृहीत किया। गुरुजी की इस प्रकार के अध्ययन की शैली भगवत्पाद के अध्ययन की शैली का स्मरण कराती है।

श्रृंगेरी में एक सौ तीस (१३०) से अधिक वर्षों से प्रतिवर्ष महागणपति वाक्यार्थसभा आयोजित होती है। इस सभा में शास्त्रों में अत्यधिक परिश्रम करने वाले अत्यंत व्युत्पन्न विद्वान ही प्रवेश कर सकते हैं। सबसे पहले सम्पूर्ण शास्त्रों के ज्ञाता जगद्गुरु न्यायशास्त्र के वाक्यार्थ को प्रस्तुत करते हुए इस सभा का प्रारम्भ करते हैं। उसके बाद अन्य विद्वान अपने-अपने वाक्यार्थ प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार भारत देश में प्रचलित कई वाक्यार्थसभाओं में श्री महागणपति वाक्यार्थसभा सबसे महत्त्वपूर्ण और प्रसिद्ध है।

एक बार इस सभा में गुरुजी न्यायशास्त्र के सामान्य निरुक्ति ग्रन्थ पर 'विशिष्टद्वयाघटितत्व' विषय पर विचार प्रस्तुत कर रहे थे। इस संदर्भ में विभिन्न शास्त्रों में व्युत्पन्न अनेक विद्वान उपस्थित थे। इनमें आंध्रदेशीय न्यायशास्त्रज्ञ, मद्दुलपल्लि माणिक्यशास्त्रीजी भी विद्यमान थे। श्री गदाधरभट्टाचार्य ने हेत्वाभास के सामान्यलक्षण में अनतिरिक्तवृत्तित्व रूप अवच्छेदकत्व का निवेश करने पर महाविशिष्ट में अतिव्याप्ति प्रदर्शित करके उसके वारण करने के लिए विशिष्टद्वयाघटितत्व विशेषण का निवेश किया है। गुरुचरण द्वारा विचार प्रस्तुत करते समय माणिक्यशास्त्रीजी ने प्रश्न पूछा "महाविशिष्ट में अतिव्याप्ति के वारण के लिए अनतिरिक्तवृत्तित्वरूप अवच्छेदकत्व के समान स्वरूपसम्बन्धरूप अवच्छेदकत्व का भी निवेश कर दीजिए। उसी से जब महाविशिष्ट में अतिव्याप्ति का वारण किया जा सकता है तो पुनः गुरुभूत विशिष्टद्वयाघटितत्व के निवेश का क्या प्रयोजन है?" इस पर गुरुचरण ने अत्यंत शीघ्र ही उत्तर दिया "अनतिरिक्तवृत्तित्वरूप अवच्छेदकत्व के समान स्वरूपसम्बन्धरूप अवच्छेदकत्व का निवेश करने पर व्यापकसामानाधिकरण्यघटितसत्प्रतिपक्ष में अव्याप्ति हो जाएगी, अतः भट्टाचार्य का विशिष्टद्वयाघटितत्व का निवेश ही उचित है।" इस प्रकार समाधान करके अग्रिम विचारों को प्रस्तुत कर शास्त्रार्थ को संपन्न किया। इसके बाद शास्त्रीजी ने गुरुचरणों के पास जाकर उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम करते हुए कहा, "मैं विभिन्न वाक्यार्थ सभाओं में भाग लेता हूँ। जहाँ-जहाँ विद्वान

WWW.SRINGERI.NET

विशिष्टद्वयाघटितत्व के विषय पर विचार प्रस्तुत करते हैं, वहाँ मैं यह प्रश्न पूछता हूँ। तब सभी विद्वान 'इस प्रश्न का समाधान चिन्तनीय है अथवा समाधान नहीं ज्ञात है' - ऐसा बोलते थे। कोई भी इस प्रश्न का उत्तर नहीं दे सका। जब मैंने यह प्रश्न श्रीचरणों के सामने रखा, तो श्रीचरणों ने तुरंत ही समाधान दे दिया। इस प्रकार का वैदुष्य केवल श्रीचरणों के पास ही देखा जा सकता है!"। इस प्रकार कह कर उन्होंने सहर्ष एवं भक्तिपूर्वक पुनः पुनः प्रणाम किया। इससे यह स्पष्ट है कि हमारे गुरुजी का न्यायादि शास्त्रों में अतिशय गंभीर वैदुष्य है।

गुरुजी स्वयं सकल शास्त्रों के तत्त्व को जानने वाले, शास्त्रपोषकसभा आदि के प्रवर्तन द्वारा शास्त्रों का प्रचार करने वाले, शास्त्रज्ञ विद्वानों को सम्मानित कर उन्हें प्रेरित करने वाले एवं स्वयं विद्यार्थियों को शास्त्रों की शिक्षा देते हुए विराजमान हैं। यह गुरुजी का ही अत्यंत वैशिष्ट्य है कि स्वयं शास्त्रों में अत्यंत व्युत्पन्न होने के साथ-साथ शास्त्रों के जिज्ञासुओं के लिए शास्त्र का अध्यापन कार्य भी करते हैं। मठ के अनेक कार्यों के होने पर भी गुरुजी शास्त्र का पाठन कार्य कभी नहीं छोडते हैं।

खर नामक संवत्सर (सन् २०११) चैत्र मास में उन्होंने हमें न्यायशास्त्र पढ़ाना प्रारम्भ किया। उस समय सबसे पहले तर्कसंग्रह ग्रंथ का पाठ शुरू हुआ था। तत्पश्चात् ग्यारह महीनों में तर्कसंग्रह, नीलकण्ठी व्याख्या सहित दीपिका, न्यायसिद्धांत मुक्तावली एवं दिनकरी का पाठ संपन्न हुआ। उसके बाद वे दक्षिण भारत के विजय यात्रा पर निकल पड़े। उस समय गुरुजी ने शृङ्गगिरि से प्रस्थान करके लगभग तेरह महीनों तक कर्नाटक, केरल के द्रविड़देश और आंध्रप्रदेश में विजय यात्रा किया। इस यात्रा के समय भी उन्होंने कभी भी अध्यापन कार्य नहीं छोडा। यात्रा के तेरह महीनों में उन्होंने न्यायशास्त्र के गादाधरी सहित पंचलक्षणी, चतुर्दशलक्षणी, सिद्धांतलक्षण, पक्षताग्रंथ एवं प्रतिज्ञालक्षणान्त अवयवग्रंथ का अध्यापन किया।

WWW.SRINGERI.NET

अनेक कार्यों में व्यस्त होते हुए भी प्रत्येक पक्ष में अनध्ययन दिन को छोड़कर प्रत्येक दिन नियमपूर्वक अध्यापन कार्य करते थे। पाठशालाओं में केवल न्यायशास्त्र का अध्यापन कराने के लिए ही नियुक्त जो अध्यापक होते हैं वे भी इतने कम काल में इतने सारे ग्रंथों का अध्यापन कराने में समर्थ नहीं होते हैं। तत्पश्चात् शृंगेरी आने के बाद हेतुलक्षणादि-अवयवग्रंथ, सामान्यनिरुक्ति, सव्यभिचार, सत्प्रतिपक्ष, शक्तिवाद, व्युत्पत्तिवाद एवं प्रामाण्यवाद नामक अवशिष्ट वादग्रंथों का अध्यापन कराया। जैसे जगद्गुरु श्रीमद् आद्यशंकरभगवत्पादाचार्य ने समग्र भारत में तीन बार यात्रा करते हुए भी अपने शिष्यों को भाष्य पढ़ाए, यात्रा के मध्य भी उन्होंने कभी भी अध्यापन कार्य नहीं छोडा, वैसे ही हमारे गुरुजी ने हम शिष्यों को न्यायशास्त्र, वेदांत शास्त्र और अन्य शास्त्रों का अध्ययन कराया। यही वास्तविक शास्त्रों के संरक्षकत्व का उदाहरण है, जिसमें स्वयं शास्त्रों में पारंगत होकर, वे प्रतिदिन शिष्यों को पढ़ाते हैं और शास्त्रपोषकसभा आदि के द्वारा शास्त्रों का प्रचार करते हैं।

जब गुरुजी हमें पढ़ाते थे, तब किसी ग्रंथ के पाठ के बाद हमने उनसे पूछा – "इस ग्रंथ की परीक्षा कब होगी?" तब गुरुजी ने ऐसा कहा – "हमारे

WWW.SRINGERI.NET

पाठन विधि में कभी भी परीक्षा हो सकती है, इसलिए तुम सदैव तैयार रहो। 'परीक्षा में उत्तीर्ण हो' - ऐसा हम नहीं कह सकते हैं क्योंकि हम हमेशा परीक्षा लेते रहते हैं। इसलिए जब भी हम प्रश्न पूछें, तब उसका उत्तर देने के लिए तुम्हें तत्पर रहना चाहिए।"

WWW.SRINGERI.NET

हमारे शास्त्राध्ययन काल में एक बार गुरुजी ने शास्त्र का अध्ययन किस प्रकार करना चाहिए इस विषय में ऐसा कहा था – जगद्गुरु श्रीमद् विद्यारण्य महास्वामीजी ने पञ्चदशी ग्रंथ में मुमुक्षुओं को ब्रह्म-विचार किस प्रकार करना चाहिए इस प्रश्न का उत्तर के रूप में –

तच्चिन्तनं तत्कथनमन्योन्यं तत्प्रबोधनम् ।
एतदेकपरत्वं च ब्रह्माभ्यासं विदुर्बुधाः ॥

ऐसा एक श्लोक कहा है। इस श्लोक में तत्-शब्द से ब्रह्म का ग्रहण करना है। इस प्रकार मुमुक्षुओं को हमेशा **तच्चिन्तनं** – ब्रह्मविषयक चिन्तन ही करना चाहिए। निष्प्रयोजक होने के कारण ब्रह्म से भिन्न

अनित्य वस्तुओं का चिन्तन कभी नहीं करना चाहिए। हमेशा **तत्कथनं** – ब्रह्मज्ञान के लिए उपयुक्त शब्दों का ही उच्चारण करना चाहिए। इसी प्रकार **अन्योन्यं तत्प्रबोधनं** – अन्य जिज्ञासुओं के साथ ब्रह्म के विषय में ही विचार करना चाहिए। जैसे – ब्रह्म के विषय में जो अंश एक मुमुक्षु जानता है तो उस अंश को उसे दूसरे मुमुक्षुओं को वह बताना चाहिए। स्वयं को अज्ञात विषय को जो दूसरे जानते हैं उन विषयों को उनके मुख से सुनना चाहिए। इस प्रकार एक दूसरे को ब्रह्म का बोधन करते हुए विचार करना चाहिए। **एतदेकपरत्वं च** – ब्रह्मविचार में रमण। **ब्रह्माभ्यासं** – ब्रह्म का विचार, **विदुर्बुधाः** – विद्वान् लोग मानते हैं। गुरुजी ने कहा है कि ऊपर के श्लोक में कही गई रीति से केवल मुमुक्षुओं को ही नहीं अपितु न्यायशास्त्र को जानने की इच्छा वालों को भी इसी प्रकार अभ्यास करना चाहिए। अतः –

तच्चिन्तनं तत्कथनमन्योन्यं तत्प्रबोधनम् ।
एतदेकपरत्वं च तर्काभ्यासं विदुर्बुधाः ॥

इस प्रकार भी इस श्लोक का पाठ समझना चाहिए। न्यायशास्त्र का अध्ययन भी इसी प्रकार अत्यंत निष्ठा एवं ध्यान पूर्वक करना चाहिए।

शास्त्र के बहुत सारे विषय हमारे गुरुजी को हमेशा उपस्थित रह कर उनके मुखारविन्द से ऐसे प्रकाशित होते रहते हैं, जैसे प्रकाशित होने में विषयों के बीच परस्पर स्पर्धा हो कि "पहले मैं प्रकाशित होता हूँ, फिर तुम"। बहुत सारे विद्वान लोग जिन्होंने शास्त्रों में अत्यंत परिश्रम किया हुआ है वें हमारे गुरुजी के मुखारविन्द से अनेक नूतन विषयों को समझ कर इस प्रकार सोचते हैं – "हम लोगों ने इस शास्त्र में अनेक वर्षों तक अत्यधिक परिश्रम किया है, फिर भी आज तक इस विषय को नहीं जानते थे। गुरुजी के द्वारा बताए जाने पर ही हमें इस अपूर्व विषय का ज्ञान हुआ।" इस प्रकार की असाधारण विद्वत्ता जगद्गुरु में ही देखी जा सकती है।

गुरुजी ने शास्त्र के प्रचार एवं पोषण के लिए एवं शास्त्रों के अध्येताओं के प्रोत्साहन के लिए "शास्त्र पोषक सभा" इस नाम से एक सभा की शुरुआत की। इस सभा में बहुत सारे विद्यार्थियों ने न्याय, वेदान्त, मीमांसा, व्याकरणशास्त्र एवं वेदभाष्य का अध्ययन किया है। अध्ययन के अन्त में गुरुजी ही उनकी परीक्षा लेते हैं। उस परीक्षा में जो उत्तीर्ण होता है उसे विद्वत्प्रवर ऐसी उपाधि प्रदान करके गुरुजी अनुग्रह करते हैं। वे विद्वान लोग जो इस परीक्षा में उत्तीर्ण हुए हैं आज देश के विभिन्न कोनों में अपने विद्वत्ता के कारण अत्यंत प्रतिष्ठित हैं। वे लोग अपने आपको धन्य मानते हुए कहते हैं कि – "हमने शास्त्र पोषक सभा के माध्यम से शास्त्रों का अध्ययन किया है। यह हमारा परम सौभाग्य है क्योंकि शास्त्रों को पढ़ने के बाद स्वयं जगद्गुरु ने हमारी परीक्षा लेकर हमें 'विद्वत्प्रवर' की उपाधि प्रदान की है। जगद्गुरु के द्वारा परीक्षित होने के कारण हम धन्य हैं। हमने बहुत उत्साह एवं परिश्रम पूर्वक शास्त्र पोषक सभा के माध्यम से अध्ययन किया है।" इस प्रकार विद्वान लोग इस शास्त्र पोषक सभा के माध्यम से अध्ययन करने में एवं स्वयं जगद्गुरु के द्वारा प्रचाल्यमान महागणपति वाक्यार्थसभा में भाग ग्रहण करने में अपने आपको धन्य मानते हैं।

WWW.SRINGERI.NET

हमारे गुरुजी की शास्त्रों के विषय में अत्यंत सूक्ष्म दृष्टि है। ब्रह्मसूत्र में पाँचवा सूत्र है "**ईक्षतेर्नाशब्दम्**"। इस सूत्र के द्वारा जगत् के कारण के रूप में साङ्ख्य दर्शन में प्रतिपादित प्रधान के जगत्कारणत्व का खण्डन किया गया है। वहाँ भगवत्पाद शंकराचार्यजी का भाष्य इस प्रकार है – प्रधानम् अशब्दं – अर्थात् "**सदेव सोम्येदमग्र असीत्**", "**तदैक्षत**", "**तत्तेजोऽसृजत**" इत्यादि सूत्रों में सत्-शब्द से जिस जगत्कारण का प्रतिपादन किया गया है वह प्रधान नहीं है। जगत् के कारण के रूप में सूत्र में "**ईक्षतेः**" यह पद आया है। 'प्रधानम् अशब्दम् ईक्षतेः' ऐसा कहकर अशब्द (अर्थात् वेद में अप्रतिपादित) होने के कारण प्रधान जगत का कारण नहीं है - ऐसा कहा गया है।

किन्तु वहाँ सामान्यतः देखने पर कुछ विरोध मालूम पडता है। 'प्रधानम् अशब्दम् ईक्षतेः' - ऐसा कहने पर वहाँ हेतु के रूप में जिस ईक्षण को कहा गया है, वह पक्ष अर्थात् प्रधान में नहीं है। क्योंकि प्रधान अचेतन है और ईक्षण चेतन का धर्म है। इसलिए इस प्रकार के हेतु को देना ठीक नहीं प्रतीत होता।

इस विषय में गुरुजी कहते हैं – 'प्रधानम् अशब्दम् ईक्षणाभावात्' - ऐसा हेतु कहना चाहिए। 'ईक्षतेर्नाशब्दम्' इस सूत्र में जो नञ् है, उसके अर्थ अभाव का 'ईक्षतेः' शब्द में जो धातु का अर्थ ईक्षण है उसके और प्रत्ययार्थ जो हेतु है उसके बीच में अन्वय मानना चाहिए। तब 'ईक्षणाभावात्' ऐसा हेतु बन जाता है। यह ईक्षणाभावरूप हेतु अचेतन प्रधान में सम्भव है। इसी प्रकार से यहाँ भाष्य को समझना चाहिए।

यहाँ यह आशंका नहीं करनी चाहिए कि प्रकृत्यर्थ एवं प्रत्ययार्थ के बीच में दूसरे पदार्थ अर्थात् नञर्थ का अन्वय नहीं हो सकता है। ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए क्योंकि प्राचीनों का ऐसा प्रयोग देखा गया है। व्युत्पत्तिवाद ग्रंथ में श्रीगदाधर भट्टाचार्यजी ने प्रकृति एवं प्रत्यय

WWW.SRINGERI.NET

के अर्थ के बीच में नञर्थ के अतिरिक्त अन्य किसी अर्थ का भान नहीं होता है ऐसा कहा है। वैसे ही – "**नामूढस्येतरोत्पत्तेः**", "**नानुपमृद्य प्रादुर्भावात्**" इत्यादि (न्याय दर्शन के) सूत्र में भी ऐसा ही अन्वय स्वीकार किया गया है। "**नामूढस्येतरोत्पत्तेः**" इस सूत्र में **अमूढस्य** – अर्थात् मोह से रहित पुरुष को, **इतरयोः** – अर्थात् राग एवं द्वेष की उत्पत्ति नहीं होती है। राग, द्वेष एवं मोह में सबसे अधिक मोह अत्यंत पाप एवं वर्ज्य है। यह अर्थ सूत्र में नञ् शब्द के अलग से प्रयोग होने पर भी उसके अर्थ 'अभाव' का अन्वय **उत्पत्तेः** शब्द में जो प्रकृति एवं प्रत्यय का अर्थ

है, उनके मध्य में स्वीकार करने पर ही सम्भव है। इसी प्रकार "**नानुपमृद्य प्रादुर्भावात्**" यहाँ पर भी बीज का विनाश हुए बिना अङ्कुर की उत्पत्ति नहीं होती है - यह अर्थ विवक्षित है। वहाँ पर भी नञ् के अर्थ अभाव का प्रकृति और प्रत्यय के अर्थ के बीच ही अन्वय स्वीकार किया गया है। अतः इस प्रकार का अन्वय प्राचीनों ने ही स्वीकार किया है। इसे गदाधर भट्टाचार्यजी ने व्युत्पत्तिवाद ग्रंथ में प्रदर्शित किया है। अतः यहाँ पर भी हेतु के पक्ष में स्थिति के सम्पादन के लिए नञ् के अर्थ अभाव का प्रकृति एवं प्रत्यय के अर्थ के मध्य में अन्वय स्वीकर करना चाहिए। अतः 'प्रधानम्

WWW.SRI.CFERI.NET

अशब्दम् ईक्षणाभावात्' - ऐसा ही हेतु वहाँ स्वीकार करना चाहिए - ऐसा गुरुजी का उपदेश हैं। इस विषय को किसी भी व्याख्याताओं ने नहीं कहा है। इस प्रकार के सूक्ष्म विचार का उपदेश गुरुजी अध्यापन एवं अन्य काल में देते हैं।

न्यायशास्त्र में न्यायसिद्धांतमुक्तावली ग्रंथ की व्याख्या दिनकरी में हेत्वाभास के निरूपण के अवसर में "**यद्विषयकत्वेन ज्ञानस्यानुमितिविरोधित्वं तत्त्वं**" इस हेत्वाभास सामान्य लक्षण में तृतीयार्थ के रूप में कहा गया जो अवच्छेदकत्व है उसका क्या स्वरूप है – क्या वह स्वरूपसम्बन्धरूप है अथवा अनतिरिक्तवृत्तित्वरूप है - ऐसा विकल्प करके स्वरूपसम्बन्धरूप अवच्छेदकत्व को स्वीकार करने पर दोष के एकदेश में अतिव्याप्ति दी गई है। उसके वारण करने के लिए पर्याप्ति का निवेश करने पर असंभव दोष कहा गया है।

अनतिरिक्तवृत्तित्वरूप अवच्छेदकत्व को स्वीकार करने के पक्ष में तो ह्रदो वह्निमान् इत्यादि स्थल में 'विशिष्टं शुद्धान्नातिरिच्यते' इस नियम से वह्न्यभावविशिष्टह्रद एवं केवलह्रद के एक होने के कारण 'ह्रदः' - इस केवल विशेष्यमात्रविषयक ज्ञान - में भी वह्न्यभावविशिष्टह्रदविषयिता है, किन्तु उस ज्ञान में प्रकृतानुमितिप्रतिबन्धकता नहीं है। अतः प्रकृतानुमितिप्

रतिबन्धकतातिरिक्तवृत्ति ही वह्न्यभावविशिष्टह्रदविषयिता हो जाती है। अतः वह्न्यभावविशिष्टह्रदादि में अव्याप्ति कही गई है।

दिनकरी के व्याख्यानभूत रामरुद्री टीका में अप्रतिबन्धक जो विशेष्यमात्रविषयकनिश्चय है, उसमें विशिष्टदोषविषयिता के होने के कारण, विशिष्टदोषविषयिता प्रतिबन्धकताऽतिरिक्तवृत्ति ही होने के कारण, कहीं पर भी लक्षण का समन्वय नहीं होने से असंभवरूप दोष ही होता है, न कि अव्याप्ति। अतः रामरुद्रीकार ने दिनकरी के अव्याप्तिपद का असंभव के रूप में व्याख्यान किया है।

किन्तु यहाँ गुरुजी इस प्रकार कहते हैं "अनतिरिक्तवृत्तित्वरूप अवच्छेदकत्व के निवेश के पक्ष में दिनकरी में जो अव्याप्तिदोष कहा गया है वही ठीक है, न कि असंभव। क्योंकि 'घटोऽवृत्ति' - यहाँ पर जहाँ जहाँ घटवद्विषयिता रहती है वहाँ सभी जगह प्रकृतानुमितित्वव्यापकप्रतिबध्यतानिरूपितप्रतिबन्धकता के रहने से 'घटवद्रूप बाध में लक्षण का समन्वय सम्भव है। रामरुद्री ग्रंथ में अव्याप्तिपद का असंभव के रूप में व्याख्यान चिन्त्य है। यद्यपि सकलशास्त्र के पारंगत रामरुद्रभट्टाचार्यजी अपने ग्रंथ में अत्यंत सूक्ष्म रूप से विचार उपस्थापित करते हैं, एवं उन विचारों को जान कर व्युत्पित्सु (अर्थात् पाण्डित्य को प्राप्त करने में इच्छुक) लोग अत्यंत व्युत्पन्न होते हैं, फिर भी यहाँ 'घटोऽवृत्तिः' इस स्थल की गणना किए बिना ऐसा कहा है - ऐसा समझना चाहिए।

शास्त्रों के समान संस्कृतभाषा आदि के साहित्य में भी गुरुजी का वैदुष्य असाधारण है। उन्होंने अत्यंत रमणीय और गंभीर भाषा में अनेक भगवत्स्तोत्रों की रचना की है। संस्कृत भाषा में अपने अनुग्रह भाषण में अनेक विशिष्ट शब्दों का प्रयोग करते हैं जिनको सुनकर विद्वान लोग आश्चर्यचकित हो जाते हैं। गुरुजी सन्दर्भ के अनुसार बहुत सारे संस्कृत श्लोकों का भी उदाहरण देते हैं जो कि हमलोगों को अवश्य ग्रहण करना

चाहिए। एक बार (तमिलनाडु में स्थित) श्रीरङ्गक्षेत्र की यात्रा के अवसर पर भगवान् रङ्गनाथजी के विषय में उन्होंने यह श्लोक कहा –

श्रीरङ्गे शोभते यस्य श्रीरङ्गे शोभते च यः ।
नमोऽहं कलये तस्मै न मोहं कलये ततः ॥ इति ।

यस्य – जिस भगवान् के, **अङ्गे** – शरीर में अर्थात् वक्षस्थल में, **श्रीः** – लक्ष्मी, **शोभते, यश्च** – जो भगवान्, **श्रीरङ्गे** – श्रीरङ्गक्षेत्र में शोभते, **तस्मै** – उस श्रीरङ्गनाथ भगवान् को, **अहं नमः** – मैं प्रणाम, **कलये** – समर्पण करता हूँ, **ततः** – जिससे, **मोहं** – संसार की हेतु अविद्या को, **न कलये** – न प्राप्त होऊँ। भगवान् के अनुग्रह से संसार से मुक्त होऊँ ऐसा अर्थ है।

इसप्रकार के विषयों का उपदेश बीच-बीच में गुरुजी करते हैं। पुण्यात्मा लोग ही उनके उपदेश रूपी अमृत का अपने कान रूपी अञ्जलियों से पान कर सकते है। इसप्रकार का विशिष्टता हमारे गुरुजी में ही देखने को मिलता है।

WWW.SRINGERI.NET

परोपकारनिरतः

(परोपकार में निरत)

अगले लक्षण के अनुसार गुरु वह है जो '**परोपकारनिरतः**' है। शास्त्रों में क्या धर्म है, क्या अधर्म है? - इस विषय में कहा गया है कि – "**परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्**"। इसका अर्थ है - परोपकार पुण्य की प्राप्ति के लिए होता है, अतः वह धर्म है। दूसरे को पीडा देने से पाप होता है, अतः वह अधर्म है।

उपकार अनेक प्रकार का होता है। जिन लोगों को जिस वस्तु की जिस समय अपेक्षा होती है उन लोगों को उस समय उस चीज को देना उपकार कहलाता है। जैसे – भूखे को भोजन देना, गरीबों को धन देना और विद्यार्थियों को विद्या प्रदान करना। ये सब धर्म हैं। इसीप्रकार जिस कार्य से दूसरों को पीडा होती है उस कार्य को करना अपकार या अधर्म है।

WWW.SRINGERI.NET

गुरुजी हमेशा परोपकार ही करते हैं। यदि हम गुरुजी के विषय में केवल यह कहें कि गुरुजी हमेशा परोपकार ही करते हैं तो यह एक प्रकार की न्यूनता ही होगी। 'गुरुजी परोपकार करते हैं' - इसे कहने की अपेक्षा 'गुरुजी दूसरों पर अनुग्रह करते हैं' - ऐसा कहना ही उचित है। अनुग्रह में उपकार अन्तर्निहित ही है।

गुरुजी सर्वदा दूसरों पर अनुग्रह करते हैं। प्रतिदिन हमारे देश के विभिन्न जनपदों से एवं विदेशों से अनेक भक्त गुरुजी के दर्शन के लिए आते हैं। गीता में चार प्रकार के भक्तों का वर्णन प्राप्त होता है -

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन ।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥

कुछ लोग अपने ऋण अथवा रोग से पीडित होकर अपनी पीडा को दूर करने के लिए गुरुजी का दर्शन करने आते हैं। उन सभी को हमारे गुरुजी अपना आशीर्वाद प्रदान कर उन पर अनुगृह कर शास्त्र में कहे गए उचित

WWW.SRINGERI.NET

मार्ग को बता कर उनके दुःखों को दूर करते हैं। गुरुजी के करुणा रूपी समुद्र में जिन लोगों ने डुबकी लगाई है, उन सबका यह दृढ विश्वास है कि “जब तक हम जगद्गुरु का आश्रयण नहीं करते हैं, तभी तक हमारे क्लेश रहता है। जब हम उनके चरणों का आश्रयण करते हैं तब उनके अनुग्रह से अवश्य ही हमारे क्लेशों का नाश होता है और हमारा कल्याण होता है”। गुरुजी अपने अमृत वचनों के द्वारा तथा अमोघ आशीर्वाद के द्वारा पीडित लोगों की पीडाओं को दूर करते हैं।

प्रतिदिन गुरुजी के दर्शन के लिए आने वाले लोगों में कुछ लोग धर्मशास्त्र के विषयों को पूछते हैं, कुछ लोग पुराणों से सम्बन्धित जिज्ञासा करते हैं, कुछ लोग वेदों के विषय में, कुछ लोग न्याय आदि शास्त्रों के विषय में तो कुछ लोग वेदान्त के विषय में जिज्ञासा करते हैं। गुरुजी योग्यता के अनुसार सभी को धर्म एवं ब्रह्म तत्त्व का उपदेश देते हुए प्रमाणों के साथ उनकी जिज्ञासाओं का समाधान करके उनके अज्ञान और संशय को दूर करते हैं। इसी प्रकार प्रतिदिन धार्मिक कार्यों को करने के लिए गुरुजी के पास आकर उनकी सहायता एवं अनुग्रह की कामना करते हैं। देश में

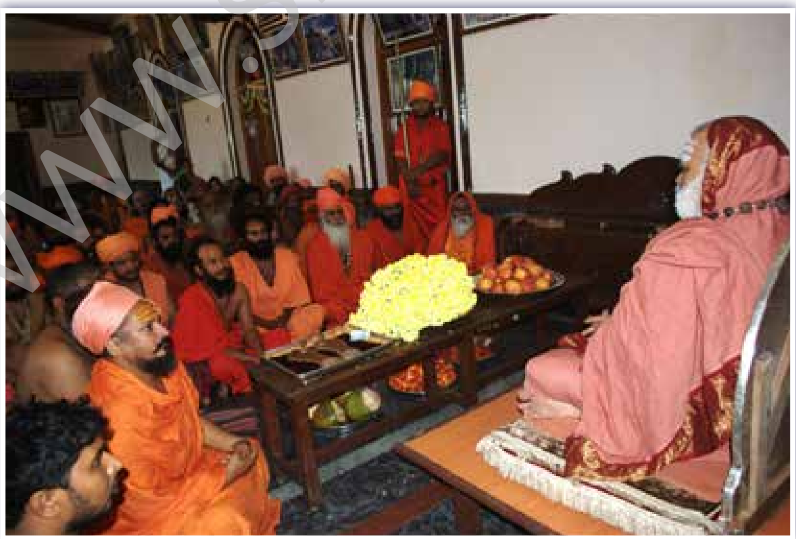

WWW.SRINGERI.NET

जहाँ जहाँ देवालयों का निर्माण, गायों का संरक्षण, वेद एवं शास्त्रों का प्रचार एवं दीन लोगों का उपकार किया जाता है, वहाँ सभी जगह उन-उन कार्यों के लिए शारदाम्बा के प्रसाद के वितरण द्वारा, अमोघ आशीर्वचनों के द्वारा, अपनी कृपादृष्टि के लेश मात्र से ही गुरुजी उन लोगों पर अनुग्रह करके उन लोगों को सत्कार्य करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। कुछ लोग तो बिना किसी आकाङ्क्षा के ही केवल दर्शन के लिए आते हैं। उन पर भी गुरुजी अनुग्रह करते हैं। अतः 'परोपकार में निरत' - यह जो गुरु का लक्षण कहा गया है, वह हमारे गुरुचरणों में स्पष्ट परिलक्षित होता है।

WWW.SRINGERI.NET

जपपूजादितत्परः

(जप एवं पूजा में निष्ठ)

गुरु के लक्षण में अगला लक्षण '**जपपूजादितत्परः**' है। गुरुजी प्रतिदिन नियम पूर्वक अपने अनुष्ठान को और श्रीशारदाचन्द्रमौलीश्वर की पूजा करते हैं। प्रतिवर्ष चैत्र के महीने से लेकर फाल्गुन के महीने तक श्रीरामनवमी, नृसिंहजयन्ती, कृष्णाष्टमी, देवीनवरात्र एवं शिवरात्रि आदि के समय उन-उन देवताओं की शास्त्रोक्त विधि से संप्रदाय के अनुसार पूजा अर्चना करते हैं। ब्रह्मनिष्ठ एवं आप्तकाम गुरुजी की अपनी किसी इच्छा के न होने पर भी केवल लोक के सङ्ग्रह एवं लोक के कल्याण के लिए वे इन अनुष्ठानों को करते हैं। शास्त्र में ऐसा कहा गया है कि – अज्ञानी जनों को कर्म के अनुष्ठान में प्रवृत्त करने के लिए ज्ञानियों को यथोचित अनुष्ठान

WWW.SRINGERI.NET

करना चाहिए। इसी को लोकसङ्ग्रह कहते हैं। भगवान ने भी गीता में कहा है कि –

> यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ।
> स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥ इति ।

सभी लोगों के बीच ब्रह्मज्ञानी को श्रेष्ठ कहा गया है। अतः उन ब्रह्मज्ञानियों द्वारा लोकसङ्ग्रह के लिए किये गए कर्म के आचरण को देख कर सभी लोग उनका अनुसरण करते हुए कर्म के अनुष्ठान में प्रवृत्त होते हैं और श्रेय को प्राप्त करते हैं। इसलिए ज्ञानियों को भी अपना कोई प्रयोजन न होने पर भी लोकसङ्ग्रह के लिए कर्म का अनुष्ठान करना चाहिए। ऐसा ही शास्त्रों का निर्णय है – "यदि तुम ज्ञानी हो, तो लोकसङ्ग्रह के लिए कर्म का अनुष्ठान करो। यदि तुम ज्ञानी नहीं हो, तो अपने प्रयोजन की सिद्धि के लिए कर्मों का अनुष्ठान करो"। इसलिए गुरुजी स्वयं किसी प्रयोजन के न होने पर भी लोक के सङ्ग्रह एवं लोक के कल्याण के लिए प्रतिवर्ष उन उन विशेष अवसर पर शास्त्र के अनुसार पूजा अर्चना आदि करते हैं और भगवान से सभी लोगों के कल्याण की प्रार्थना करते हैं।

WWW.SRINGERI.NET

अमोघवचनः

गुरु के लक्षण में अगला लक्षण है '**अमोघवचनः**'। गुरुजी के मुखारविन्द से आशीर्वाद के रूप में निकले हुए वचन कभी व्यर्थ नहीं होते हैं। जैसा कि महाकवि कालिदासजी ने कहा है – "**ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुधावति**" इति। बहुत लोग किसी कार्य के अनुष्ठान के समय अनेक विघ्नों का अनुभव करते हुए श‍ृङ्गगिरि आकर गुरुजी के चरणों में अपने कार्य की निर्विघ्न समाप्ति की कामना करते हैं। तब गुरुजी मंत्राक्षतों को देकर "अब से तुम्हारा कार्य निर्विघ्न समाप्त हो" इस प्रकार आशीर्वाद पूर्वक अनुग्रह करते हैं। इसके बाद वह कार्य अत्यंत सुलभतया संपन्न होता है। इसका अनुभव गुरुजी के समक्ष अपनी प्रार्थना को लाए हुए बहुत सारे लोगों ने किया है।

एक बार हमारे गुरुजी विजययात्रा के लिए निकल रहें थे। उस समय महामाता तङ्गिराल अनन्तलक्ष्म्यंबा उनका दर्शन करके इस प्रकार बोलीं – "आपने तेरह महीनों तक चलने वाले विजययात्रा का सङ्कल्प लिया है। मैं अत्यंत वृद्ध हूं कुछ कर भी नहीं सकती हूं। मुझे सन्देह है कि आपके आने तक मैं जीवित भी रहूंगी या नहीं"। तब गुरुजी ने कहा – "मैं सङ्कल्प के अनुसार विजययात्रा करके पुनः श्रृंगेरी वापस लौटूंगा।मेरे आने के बाद आप अवश्य मेरा पुनः दर्शन करेंगी। इस विषय में कोई सन्देह नहीं है"। इसके बाद गुरुजी विजययात्रा के लिए निकल गए। अनन्तलक्ष्म्यंबा उनके वचन को प्रमाण मान कर अत्यंत श्रद्धा पूर्वक ईश्वर का ध्यान करते हुए

WWW.SRINGERI.NET

उनकी यात्रा की समाप्ति की प्रतीक्षा कर रही थीं। गुरुजी दक्षिण भारत में तेरह मास की यात्रा करके वापस लौट आए। शृंगेरी आने के दूसरे ही दिन अत्यंत प्रसन्न चित्त से अनन्तलक्ष्म्यंबा गुरुजी का दर्शन करके कृतार्थ हुईं। उसके दो दिनों के बाद ही वे अपना शरीर त्याग कर पुण्यलोकों को प्राप्त हुईं। इस प्रकार का अमोघ वचन हमारे गुरुजी में ही देखने को मिलता है।

WWW.SRINGERI.NET

शान्तः

गुरु के लक्षणों में अगला लक्षण है '**शान्तः**'। जिसने काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य रूप छः (६) भीतर के शत्रुओं को जीत लिया हो वह शान्त कहलाता है। महात्मा लोग काम, क्रोध आदि पर विजय प्राप्त कर शुद्ध अन्तःकरण होकर सभी लोगों पर अपनी कृपादृष्टि मात्र से एवं अमृत के समान वचनों से अनुग्रह करते हैं। मूर्ख लोक काम, क्रोध आदि के वश में आकर कई निषिद्ध कार्यों को करते हैं और दुःख का अनुभव करते हैं। इसी लिए भगवान् ने भगवद्गीता में इस प्रकार कहा है –

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत् त्रयं त्यजेत् ॥ इति ।

काम, क्रोध आदि नरक के द्वार हैं। इसलिए ये भीतर के शत्रु बाहरी शत्रुओं से अधिक अहित करने वाले होते हैं। अतः हमें इन शत्रुओं पर विजय प्राप्त करना चाहिए। इस प्रकार के अन्तःशत्रुओं को गुरुजी ने पराजित कर दिया है। वे शान्त होकर शिष्यों को हित का उपदेश देते हैं। शिष्यों के हित के अलावा और कुछ नहीं चाहते हैं।

उनके दर्शन के लिए कभी-कभी प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति एवं मुख्यमंत्री आदि लोग भी आते हैं। उनको भी गुरुजी आशीर्वचनों से अनुगृहीत करते हैं। अपने लिए कुछ भी नहीं माँगते हैं। एक बार कर्णाटक प्रदेश के मुख्यमंत्री,

WWW.SRINGERI.NET

गुरुजी का दर्शन करके कर्णाटक राज्य सरकार के पक्ष से श्रीमठ की अभिवृद्धि के लिए प्रभूत धन देने की इच्छा जताई। तब गुरुजी ने उनको आदेश दिया – "श्रीमठ के लिए अपेक्षित सब कुछ भगवती श्रीशारदा परमेश्वरी के अनुग्रह से मिल जाता है। अतः इस धन को प्रजा के कल्याण में ही लगाएँ"। उसके बाद अत्यंत विनीत होकर उस मुख्यमंत्री ने वैसा ही किया। अतः काम, क्रोध आदि से रहित शान्त स्वभाव गुरुजी में स्पष्ट दिखता है।

WWW.SRINGERI.NET

वेदवेदाङ्गपारगः

(वेद एवं वेदाङ्गों में पारंगत)

गुरु के लक्षणों में अगला लक्षण है **'वेदवेदाङ्गपारगः'**। वेदों में एवं वेदाङ्गों में गुरुजी की असाधारण विद्वत्ता है। प्रतिवर्ष शंकरजयन्ती के अवसर पर श्रृंगेरी में वेदसभा होती है। उस सभा में भारत के विभिन्न प्रदेशों से आए हुए अपने अपने वेद में प्रतिष्ठित विद्वान लोग उत्साह पूर्वक भाग ग्रहण करते हैं। गुरुजी के सामने अपनी वेदशाखा पढ़ कर उनमें अत्यंत प्रीति उत्पन्न करते हैं। स्वयं गुरुजी ही उन-उन वेदों के विशेष भागों को उन्हें पारायण के लिए सूचित करते हैं। उन भागों को वेद के विद्वान अत्यंत उत्साह से पढ़ते हैं। गुरुजी के द्वारा वेदों में सूचित अनुवाकों को सुनकर

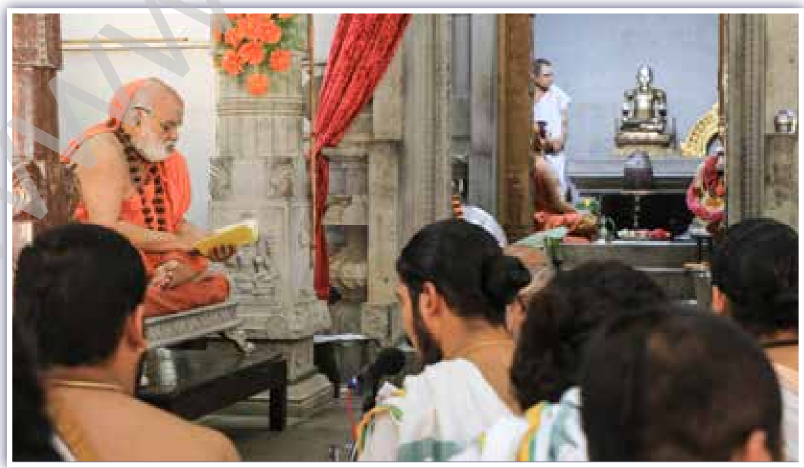

WWW.SRINGERI.NET

वेद के विद्वान कहते हैं – "जब कोई वेद की परीक्षा के लिए जाता है तब इसी प्रकार के अनुवाकों को गुरुजी पूछते हैं। ऐसे अनुवाकों को जो अच्छी तरह से बोलता है वही परीक्षा में उत्तीर्ण होता है। अतः हमें जगद्गुरु के सामने बोलने में परीक्षा के समान ही प्रतीत होता है", ऐसा कहते हुए गुरुजी के समक्ष वेद पढ़ना अपना सौभाग्य समझते हैं।

मैं कभी अपने ब्रह्मचर्याश्रम में नरसिंह वन में अपने परम गुरु, परमेष्ठी गुरु, एवं परात्पर गुरु के अधिष्ठान (समाधि) मन्दिर में अध्ययन करता था। प्रतिदिन गुरुजी अधिष्ठान मन्दिर में दर्शन के लिए आते थे। मैं अध्ययन करते समय गुरुजी का दर्शन करता था। एक दिन जब वे अधिष्ठान मन्दिर में दर्शन करने के बाद अपने सामने मुझे हाथ जोड़ते हुए देखे तब उन्होंने पूछा कि "आज कौन सा वार है?" मैंने कहा "आज रविवार है"। फिर गुरुजी ने कहा कि – "रविवार को अरुणप्रश्न का पारायण प्रशस्त होता है। तुम प्रत्येक रविवार को अरुणप्रश्न का पारायण करते हो कि नहीं?"। मैंने कहा "मैं नियम पूर्वक प्रत्येक रविवार को अरुणप्रश्न का पारायण नहीं करता हूं"। गुरुजी ने उसी क्षण कहा कि "आज से प्रत्येक रविवार को तुम नियम पूर्वक अरुणप्रश्न का पारायण करो"। मैंने तत्क्षण ही उन्हें

WWW.SRINGERI.NET

दण्डवत् प्रणाम करते हुए "ऐसा ही करूँगा" ऐसा कहते हुए उनकी आज्ञा को शिरोधार्य किया। तब उन्होंने कहा कि "अभी पारायण आरम्भ करो हम बैठ कर सुनेंगे"। इसके बाद मैंने उनके समक्ष सम्पूर्ण अरुणप्रश्न का पारायण किया। उसके बाद वे गुरुनिवास की ओर चले गए।

अगले दिन गुरुजी ने स्वयं ही मुझसे कहा कि "आज सोमवार है। सोमवार के दिन स्वाध्याय ब्राह्मण का पाठ करना चाहिए। अतः अभी पारायण का आरम्भ करो, मैं यहीं पर बैठ कर सुनूँगा"। मैंने स्वाध्याय ब्राह्मण का पाठ किया। उस स्वाध्याय ब्राह्मण में उपान्तिम अनुवाक में "**नमो नमः शिशुकुमाराय नमः**" ऐसा मंत्र है। जब मैं उस मंत्र पढ़ रहा था, तब गुरुजी ने पूछा, "इस मंत्र के अन्त में जो नमः-शब्द के अंत में जो अकार है उसका क्या स्वर है? स्वरित है कि उदात्त है?" मैंने यद्यपि तत्क्षण ही कहा कि यहाँ पर उदात्त स्वर है, पर मुझे संशय था। मैंने अध्ययन के काल में उदात्त स्वर का ही अभ्यास किया था। किन्तु कुछ लोग वहाँ स्वरित स्वर पढ़ते है।

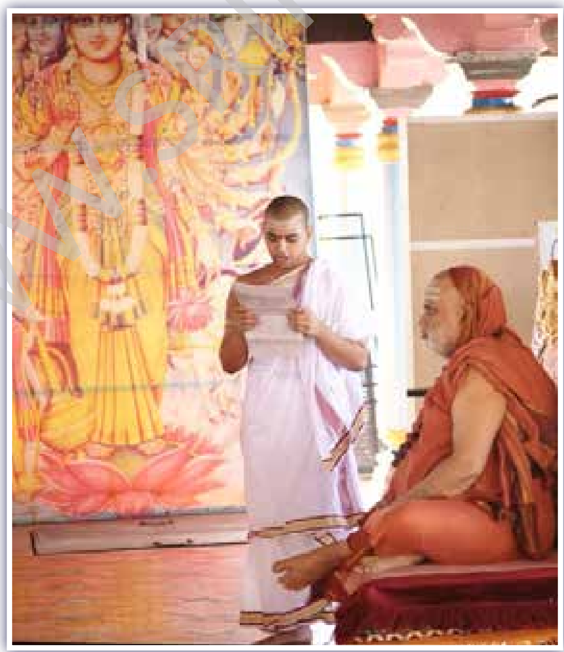

WWW.SRINGERI.NET

कुछ पुस्तकों में स्वरित स्वर का ही चिन्ह भी लगा हुआ है। अतः यहाँ पर स्वर का निर्णय कैसे करना है? यह जिज्ञासा मेरे मन में उत्पन्न हुई। मैंने गुरुजी से पूछा तो गुरुजी ने तत्क्षण ही आरण्यकशिक्षा के अन्तर्गत आए इस श्लोक को कहा –

आरण्यके तु वाक्यान्ते उदात्तो नम उच्यते ।
नोपते-वै-महो-जाय-सेभ्यः पूर्वो विगाः क्रमात् ॥

तैत्तिरीय आरण्यक में कुछ परिगणित स्थलों को छोड़ कर वाक्य के अन्त में जहाँ पर नमः-शब्द आता है, वहाँ उदात्त स्वर ही पढ़ना चाहिए। उन स्थलों का परिगणन करते हुए श्लोक में कहा गया है कि – "**नोपते-वै-महो-जाय-सेभ्यः पूर्वो विगाः क्रमात्**"। "**उपते नमः**" यद्यपि वाक्य के अन्त में नमः - शब्द है, उसे स्वरित स्वर से युक्त ही पढ़ना चाहिए। श्लोक में वै-शब्द से "**विश्वरूपाय वै नमो नमः**" महो-शब्द से "**महो नमो नमः**" जाय-शब्द से "**महाराजाय नमः**" से-शब्द से "**सुतरसि तरसे नमः**" इन सभी जगहों पर नमः-शब्द का स्वरितस्वर से युक्त ही पाठ करना चाहिए। विगा-शब्द से मंत्रब्राह्मण के "**विगा इंन्द्र विचरन्त्थ्स्पाशयस्व**" इस अनुवाक में "**सकृत्ते अग्ने नमः**। द्विस्ते नमः। त्रिस्ते नमः। चतुस्ते नमः। पञ्चकृत्वंस्ते नमः। दशकृत्वंस्ते नमः। शतकृत्वंस्ते नमः। आसहस्रकृत्वंस्ते नमः। अपरिमितकृत्वंस्ते नमः" इन सभी जगहों पर अनेक बार सुनाई दिया जाने वाला नमः-शब्द का भी स्वरितस्वर से युक्त ही पाठ करना चाहिए। अन्य स्थलों में आरण्यक भाग में "निधनपतये नमः" "मनोन्मनाय नमः" इत्यादि स्थलों में नमः-शब्द का उदात्तस्वर से युक्त पाठ करना चाहिए। यह उपरोक्त श्लोक का तात्पर्य है ऐसा गुरुजी ने कहा। तब मेरा स्वर के विषय में जो सन्देह था वह नष्ट हो गया। इतने दिनों से अपने अभ्यास के कारण जो मैं उदात्त एवं स्वरित स्वरों को उन-उन स्थलों में पढ़ता था उसका विवेक गुरुजी के उपदेश के बल से मुझे हो गया।

WWW.SRINGERI.NET

एक बार रात्रि में चन्द्रमौलीश्वर की पूजा के काल में तैत्तिरीयसंहिता के द्वितीय काण्ड के पञ्चम प्रश्न में विद्यमान "**एष वै देवरथो यद्दर्शपूर्णमासौ**" – इस अनुवाक के क्रम पाठ का पारायण मैंने किया था। अगले दिन गुरुजी ने मुझसे पूछा – "कल तुमने 'एष वै देवरथो यद्दर्शपूर्णमासौ' यह अनुवाक पढ़ा था, उस अनुवाक में दर्शपूर्णमासौ-शब्द कितनी बार आया है?" मैं उस अनुवाक को कण्ठस्थ करके पढ़ता था किन्तु उस अनुवाक में कितनी बार दर्शपूर्णमासौ-शब्द आया है यह मैंने कभी नहीं सोचा था। तत्क्षण मैंने गणना आरम्भ की। तब गुरुजी ने कहा – "अभी गणना मत करो, उसके लिए बहुत समय लगेगा। इस अनुवाक में उन्नीस बार आया है। अब तुम अपने कमरे में जाकर गणना करो"। मैंने कमरे में जाकर धीरे-धीरे गणना की। ठीक उन्नीस बार ही दर्शपूर्णमासौ-शब्द उस अनुवाक में आया। इसीप्रकार श्रुतियों में कौन सा याग किस प्रश्न में पठित है याज्यापुरोनुवाक्य कहाँ पर पठित है इत्यादि विषयों में गुरुजी का अपार ज्ञान है। उसीप्रकार वेदों के भाष्यों से संबंधित विचारों को सूक्ष्म दृष्टि से विश्लेषण करने में निपुण हैं एवं वेदाङ्गों के भी गुरुजी महान विद्वान है। अतः "वेद और वेदाङ्गों के पारंगत" यह जो गुरु का लक्षण है वह हमारे गुरुजी में स्पष्ट परिलक्षित होता है।

WWW.SRINGERI.NET

योगमार्गानुसन्धायी

(योगमार्ग का अनुसरण करने वाले)

अगला लक्षण है **'योगमार्गानुसन्धायी'** । इसका अर्थ हैं अष्टाङ्ग योग में निरत। गुरुजी योगशक्ति के द्वारा अन्यत्र विद्यमान शिष्यों के मन में

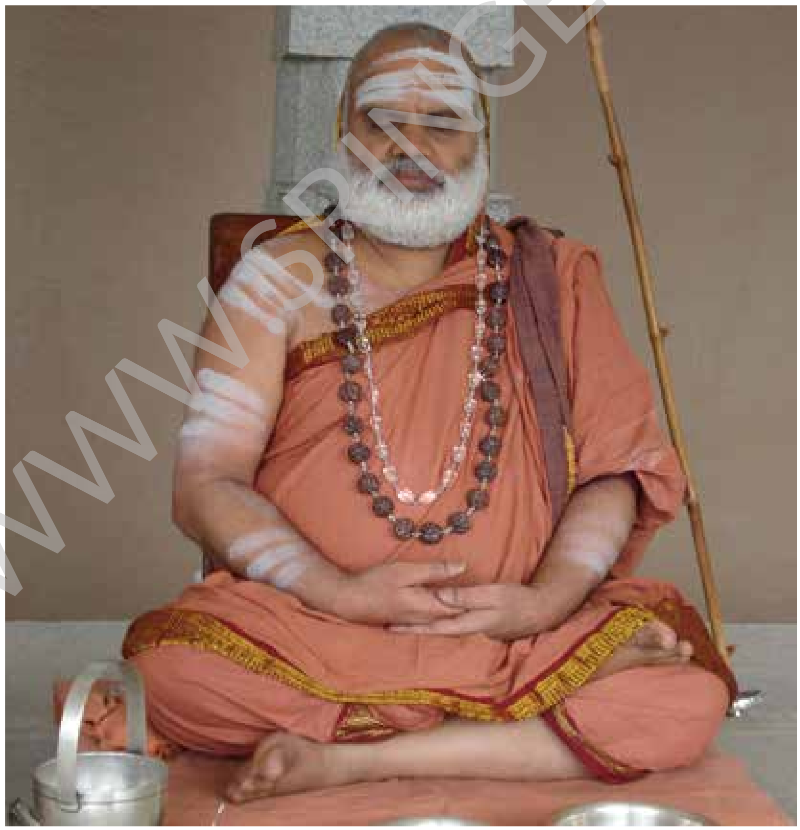

WWW.SRINGERI.NET

विद्यमान चिन्ताओं को जानकर उनके द्वारा की गई प्रार्थना को सुनकर उन पर अनुग्रह करते हैं। गुरुजी प्रतिवर्ष श्रावण मास एवं कार्तिक मास के सोमवारों में मध्याह्न काल में भगवान् चन्द्रमौलीश्वर की महापूजा करते हैं। जब मैं ब्रह्मचारी था तब एक बार सोमवार के दिन पूजा में जाने योग्य मेरा स्वास्थ्य नहीं था। उस समय शरीर के अस्वस्थ होने पर मुझे चिन्ता हुई कि मैं कैसे पूजा स्थल में जाऊँगा। आधे घण्टे के बाद पूजा आरम्भ होनेवाली थी। मैं कमरे में ही व्याकुल होकर गुरुजी के चरणों का ध्यान करते हुए दोनों आँखों को बंद करके बैठा था। कुछ देर के बाद मैंने एक दृश्य देखा "गुरुजी चन्द्रमौलीश्वर की पूजा कर रहे थे, उन्होंने पूजा करते हुए ही मुझसे कहा कि 'तुम चिन्ता मत करो, अभी उठ कर पूजा में आ जाओ'।"

उसके बाद मैंने अपने नेत्र खोले। पहले मेरे शरीर में जो समस्या थी, नेत्र खोलने के बाद उसका लेशमात्र भी मुझे अनुभव नहीं हुआ। सब कुछ ठीक हो चुका था। तुरंत ही मैं प्रकोष्ठ से निकलकर अत्यंत त्वरित गति से पूजा के लिए चला गया। जब मैं पूजागृह में पहुँचा तभी गुरुजी ने भगवान् चन्द्रमौलीश्वर की पूजा आरम्भ की थी। उस दिन भी मैंने पूर्व के समान पूजा देखी। उनके अनुग्रह से मैं कृतार्थ हुआ।

गुरुजी इसीप्रकार दूर स्थलों में विद्यमान शिष्यों की भी अत्यंत श्रद्धा से की गई प्रार्थना को सुन कर उन पर अनुग्रह करते हैं - ऐसा कई भक्तों ने कई बार अनुभव किया है। गुरुजी की ऐसी शक्ति है। अतः वे योगधुरन्धर हैं।

WWW.SRINGERI.NET

देवता-हृदयङ्गमः

(देवताओं के हृदय में निवास करने वाले)

इसके बाद **'देवता-हृदयङ्गमः'** ऐसा गुरु का लक्षण कहा गया है। सद्गुरु देवताओं के लिए भी समादरणीय होते हैं। संसार में कोई जान बूझ कर,

WWW.SRINGERI.NET

और कोई अज्ञान के कारण, देवताओं के विषय में कुछ अपराध करते हैं। उससे देवता लोग उनसे क्रुद्ध हो जाते हैं। फिर वह अपने अपराध के फल को प्राप्त करता है। फिर वह उससे पीडित होकर देवताओं के क्रोध से अपने आप की रक्षा करने का यत्न करता है। उस समय उस पुरुष को जो देवता उस पर क्रोधित है, जिसके प्रति उस पुरुष ने अपराध किया है, उस देवता का ही शरण लेना चाहिए एवं उस देवता के समक्ष क्षमा माँगनी चाहिए। किन्तु देवताओं का सुलभता से साक्षात्कार नहीं हो सकता है। ऐसी स्थिति में कैसे वह देवताओं से क्षमा माँगेगा? कैसे वह उन देवताओं को प्रसन्न कर सकता है? तो इसका समाधान है कि वह पूर्वोक्त सभी लक्षणों से युक्त सद्गुरु का आश्रय स्वीकार करे। सकल शास्त्र के ज्ञाता सद्गुरु उस शिष्य के अपराध को जानकर उसके प्रति देवताओं के क्रोध के उपशम के मार्ग का उपदेश, शास्त्र के अनुसार देकर, उस पर अनुग्रह करते हैं।

गुरु के उपदेश के अनुसार शिष्य श्रद्धा पूर्वक अपने विहित कर्मों को अच्छी प्रकार से करके देवताओं के क्रोध से मुक्त होकर उनकी प्रसन्नता से उनके अनुग्रह का पात्र बनता है। इस प्रकार से गुरु शिष्य की रक्षा करता है। इसीलिए पूर्वजों ने कहा है – "**दैवे रुष्टे गुरुस्त्राता**।" अतः सद्गुरु देवताओं के भी हृदय में निवास करने वाले होते हैं। ऐसे गुरु के प्रति शिष्य को कभी भी अपराध नहीं करना चाहिए। क्योंकि देवताओं को क्रोध होने पर गुरु रक्षा करते हैं किन्तु "**गुरौ रुष्टे न कश्चन**" अर्थात् गुरु क्रोधित होने पर तीनों लोको में कोई भी रक्षा नहीं कर सकता है। अतः शिष्य को अत्यंत श्रद्धा पूर्वक गुरु की सेवा करनी चाहिए। कभी भी गुरु को कुपित नहीं करना चाहिए।

इस प्रकार शास्त्र में कहे गए सभी लक्षणों से युक्त सकल शास्त्र में पारंगत ब्रह्मनिष्ठ हमारे गुरुजी सभी लोगों पर अनुग्रह करते हुए विराजमान हैं। उनके गुणों का केवल लेशमात्र ही यहाँ पर कहा गया है। यदि मैं उनके सभी गुणों का वर्णन करूँगा तो सम्भवतः हजारों पृष्ठों में भी समाप्त नहीं

WWW.SRINGERI.NET

हो सकेगा।

इस प्लव नामक संवत्सर के चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की षष्ठी तिथि को गुरुजी का इकहत्तरवां (७१) वर्धन्ती उत्सव (जन्म दिवस का उत्सव) बहुत अत्यंत वैभव पूर्ण रीति से मनाया जा रहा है। यहाँ वैभव का अर्थ इस अवसर पर शास्त्र में कही गई विधि के अनुसार अनेक प्रकार के लोगों के कल्याण के लिए और भगवान की प्रीति के लिए किए जाने वाले जप, होम एवं पूजा आदि से है। न कि इन्द्रियों को तृप्त करने वाले अन्य किसी वैभवपूर्ण कार्यक्रमों से।

इस लिए सभी सङ्गों का परित्याग करने वाले अपार वैराग्य के सिन्धु अपने देह में भी ममत्व के भाव से रहित हमारे गुरुजी ने अपने वर्धन्ती उत्सव को शिष्य लोग अत्यंत वैभवपूर्ण रीति से करें - ऐसी अभिलाषा के न होने पर भी लोक के कल्याण के लिए इस कार्यक्रम का अनुमोदन किया है। अतः इस सन्दर्भ में भगवान की प्रीति के लिए एवं लोक के कल्याण के लिए शास्त्र में कहे गए विधान से अयुतचण्डीमहायाग, अतिरुद्रमहायाग, श्रीशारदाकोटिकुङ्कुमार्चन आदि अनेक कार्यक्रमों का आयोजन किया जा रहा है। इसी प्रकार वेद, शास्त्र, पुराण एवं साहित्य आदि में निष्णात सत्तर विद्वानों को श्रीभारतीतीर्थपुरस्कार प्रदान, दीन लोगों का उपकार आदि कार्य किया जाएगा।

यहाँ पर यह विशेष है – हमारे गुरुजी जैसे महात्मा लोग वसन्त ऋतु के समान है। जैसे वसन्त ऋतु अपने किसी भी प्रयोजन के न रहते हुए भी सभी मनुष्यों एवं पशु-पक्षियों का कल्याण करता है वैसे ही महात्मा लोग अपने किसी भी प्रयोजन के न रहते हुए भी सभी लोगों का कल्याण करते हैं। इसीलिए भगवत्पाद श्रीशंकराचार्यजी ने कहा है –

WWW.SRINGERI.NET

शान्ता महान्तो निवसन्ति सन्तो वसन्तवल्लोकहितं चरन्तः ।
तीर्णाः स्वयं भीमभवार्णवं जनानहेतुनान्यानपि तारयन्तः ॥

वसन्त ऋतु के सदृश हमारे गुरुजी का यह वर्धन्ती उत्सव सकल लोक में आनन्द करने वाले वसन्त ऋतु में संपन्न होगा। अतः इस सन्दर्भ में हम सभी वसन्त ऋतु का एवं वसन्त ऋतु के समान हमारे गुरुजी की कृपा का एक साथ अनुभव कर सकेंगे। यह इस वर्धन्ती-उत्सव का विशेष महत्त्व है।

इस अवसर पर हम अनन्तश्रीविभूषित गुरुदेव के पादारविन्दों में भक्ति एवं श्रद्धा पूर्वक प्रणाम समर्पित करते हुए प्रार्थना करते हैं कि उनके अनुग्रह से सभी आस्तिक जनों की कल्याणकारी परम्परा की अभिवृद्धि हो, सभी के पापों का नाश हो एवं सनातन धर्म की अभिवृद्धि हो।

WWW.SRINGERI.NET

गुरुवर्यदशश्लोकी

जगद्गुरुश्रीविधुशेखरभारतीमहास्वामिभिः विरचिता

दक्षिणाम्नायश्रृंगेरीशारदापीठभूषणम् ।
नमामि भारतीतीर्थं दक्षिणास्यनवाकृतिम् ॥ १ ॥

करुणारसनिष्यन्दिसरसापाङ्गवीक्षणम् ।
कटाक्षपातनिर्धूतपापौघं कलये गुरुम् ॥ २ ॥

दिग्वारणसुहृत्कीर्तिराजितं सङ्गवर्जितम् ।
कामादिद्विपपञ्चास्यं भजे भर्गार्चनोत्सुकम् ॥ ३ ॥

माधवोमाधवाभेदधिषणं भिषजं कलेः ।
प्रज्ञानिधिं नमस्यामि गूढतत्त्वावबोधकम् ॥ ४ ॥

शमादिसुगुणस्तोमभूषितं यमिनां वरम् ।
योगमार्गरतं नौमि योगक्षेमकृतं सदा ॥ ५ ॥

विद्यां विज्ञावलिर्वक्ति विमलां यं वपुष्मतीम् ।
विभूत्यै वचसां वन्दे विनीतो विश्ववन्दितम् ॥ ६ ॥

WWW.SRINGERI.NET

श्रुतिस्मृतिसदाचारपरित्राणविधौ भुवि ।
प्रभूतां प्रभुतां धत्ते यस्तं संस्तौमि सन्ततम् ॥७॥

यद्वाग्झरी सुपर्वाध्वतरङ्गिण्यवधीरिणी ।
सञ्चारपूतधरणिः पात्वाचार्यशिरोमणिः ॥८॥

अनन्तोऽपि हृदाकाशे दहरे भासतेतराम् ।
ईडे श्रुतिशिरोवेद्यं परिपूर्णं गुरूद्वहम् ॥९॥

राजाधिराजसंसेव्यं राजविद्यागुरुं श्रये ।
शिष्यालिवन्द्यपादाब्जं भारतीतीर्थदेशिकम् ॥१०॥

WWW.SRINGERI.NET

WWW.SRINGERI.NET